वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

9 772582 065005

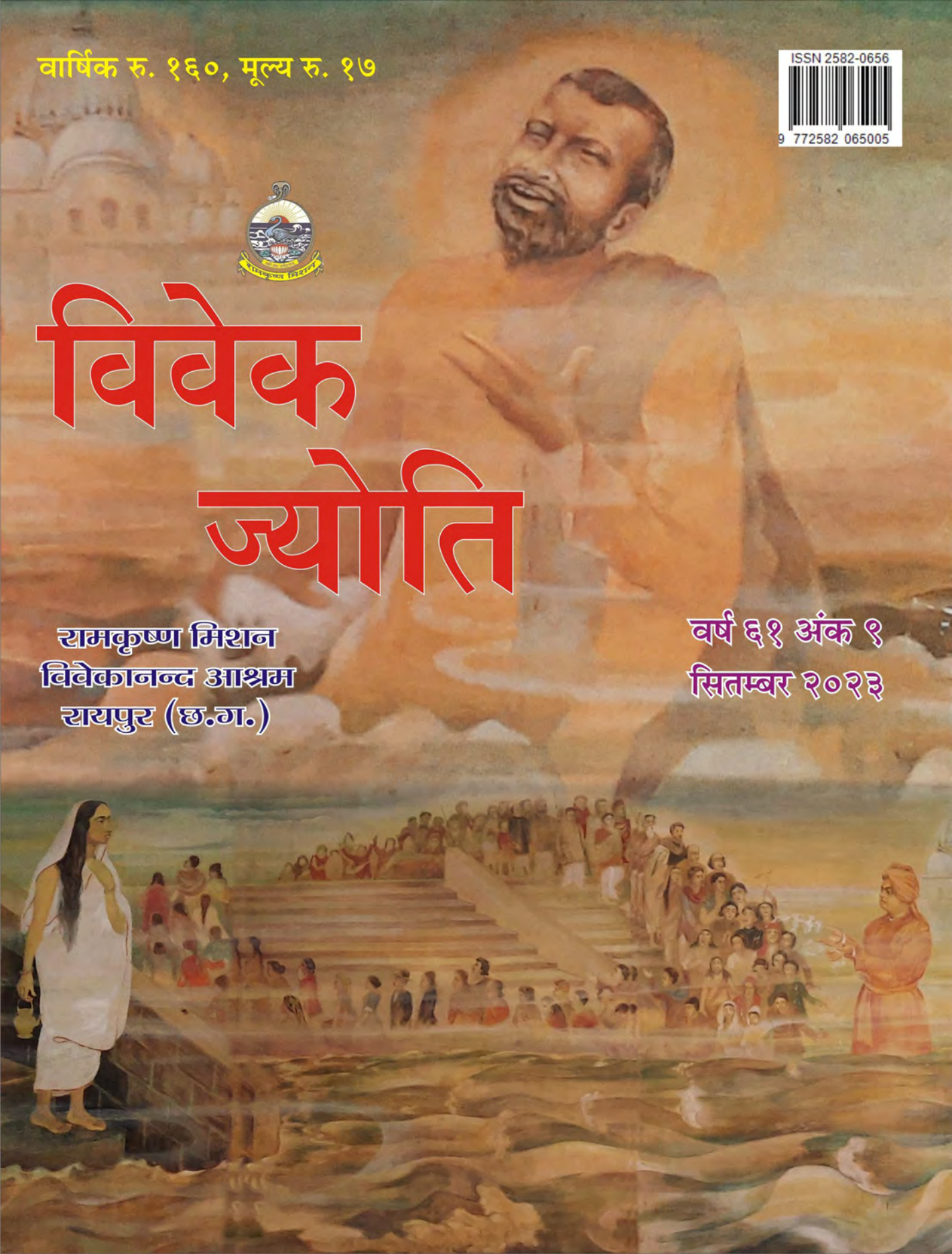

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६१ अंक ९
सितम्बर २०२३

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६१

अंक ९

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

भाद्र, सम्वत् २०८०

सितम्बर, २०२३

अनुक्रमणिका

* सत्य के अभ्यास का साहस करो : विवेकानन्द ४६२
* धर्म, संस्कृति के संवाहक श्रीकृष्ण (राजकुमार गुप्ता) ४६५
* भारतीय शिक्षा का मूल तत्त्व (स्वामी अलोकानन्द) ४६७
* हृदय के विस्तार से मनुष्य का उद्धार (स्वामी सत्यरूपानन्द) ४७०
* (बच्चों का आंगन) जीवन में शिक्षक का महत्त्व (श्रीमती मिताली सिंह) ४७१
* (युवा प्रांगण) शक्तिशाली जीवन के विकास में व्यक्तित्व विकास का महत्त्व (स्वामी गुणदानन्द) ४७९
* रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि (स्वामी पररूपानन्द) ४८१
* स्वामी विवेकानन्द और सुभाषचन्द्र : वीरयोद्धा (स्वामी सुपर्णानन्द) ४८७
* स्वामी विवेकानन्द की स्वर-ध्वनि की रिकार्डिंग के सम्बन्ध में (एम.एस. ननजूनडीह) ४९७
(कविता) सुन लो मेरी पुकार (सदाराम सिन्हा 'स्नेही') ४६६
* (कविता) कृष्ण प्रभू का यशगायक हूँ (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ४६९
* (कविता) ओ बंशीवाले (आनन्द तिवारी पौराणिक) ४७०

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ४६१
पुरखों की थाती ४६१
सम्पादकीय ४६३
सारगाछी की स्मृतियाँ ४७२
रामराज्य का स्वरूप ४७४
प्रश्नोपनिषद् ४७७
श्रीरामकृष्ण-गीता ४७८
गीतातत्त्व-चिन्तन ४९१
साधुओं के पावन प्रसंग ४९४
समाचार और सूचनाएँ ५०१

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

श्रीमाँ सारदा देवी का अपूर्व दर्शन ! बेलूड़ ग्राम में गंगा तट पर नीलाम्बर बाबू के उद्यान भवन में १८९३ ई. में पूर्णिमा को श्रीमाँ ने देखा कि श्रीरामकृष्ण देव गंगाजी में उतर गये और गंगाजी में विलिन हो गये। उसके बाद स्वामी विवेकानन्द 'जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण' उच्चारण करके उस जल का छिड़काव सभी पर करने लगे और असंख्य लोग उससे मुक्त होने लगे।

सितम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

०५	शिक्षक दिवस
०७	कृष्ण जन्माष्टमी
१३	स्वामी अद्वैतानन्द
१७	विश्वकर्मा पूजा
१९	गणेश चतुर्थी
१०,२५	एकादशी

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्त्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्त्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें।

– व्यवस्थापक

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
मदर इंडिया सिक्योरिटीस प्रा.लि.मुम्बई (महा.)	२१,०००/-
श्रीमती वन्दना बी. तिवारी, नागपुर (महा.)	१,०००/-
श्री अनुराग प्रसाद, गजियाबाद (उ.प्र.)	११,०००/-
,, ,,	१२,००१/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए । आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं । आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है ।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी ।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे । दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा । यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है ।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो । आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं । आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें ।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी । तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है । यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें । आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं । प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा । रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है ।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

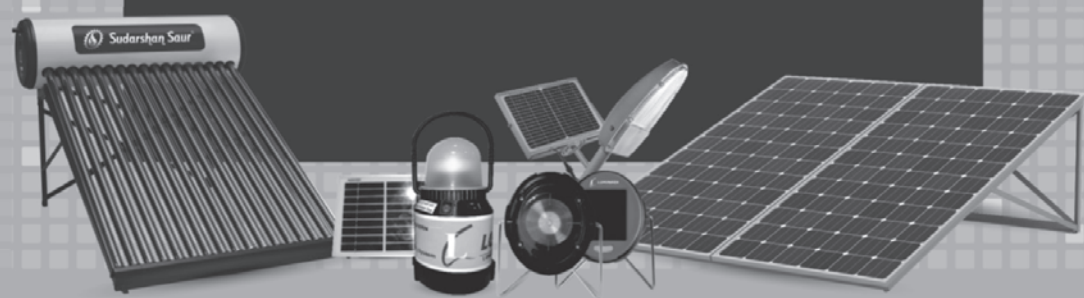

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६१ सितम्बर २०२३ अंक ९

मुकुन्दाष्टकम्

करारविन्देन पदारविन्दं
मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं
बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।
संहृत्य लोकान् वटपत्रमध्ये
शयानमाद्यन्तविहीनरूपम्।
सर्वेश्वरं सर्वहितावतारं
बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

– अपने कर-कमलों से पद-कमल को मुख-कमल में डालनेवाले वट-वृक्ष के पत्तों पर सोये हुये, बालमुकुन्द (बालकृष्ण) का मैं मन से स्मरण करता हूँ।

प्रलय-काल में समस्त विश्व का उपसंहार करके, वट के पत्तों पर शयन करनेवाले, अनादि और अनन्त सर्वेश्वर, समस्त लोकों के कल्याण के लिये अवतार लेनेवाले, बालमुकुन्द का मैं मन से स्मरण करता हूँ।

पुरखों की थाती

धर्मार्थ-काम-मोक्षेषु यस्यैकोऽपि न विद्यते।
जन्म-जन्मनि मर्त्येषु मरणं तस्य केवलम्।।८०५।।

– जो मनुष्य अपने जीवन में धर्म, अर्थ, काम-भोग तथा मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों में से किसी एक की भी प्राप्ति नहीं करता, वह इस मर्त्यलोक में बारम्बार केवल मरने के लिए ही जन्म लेता रहता है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।८०६।।

– भोग्य विषयों का ध्यान करते-करते व्यक्ति को उनके प्रति आसक्ति हो जाती है, इसके फलस्वरूप क्रमशः उनके प्रति आसक्ति और कामना जन्म लेती है और कामना-पूर्ति में बाधा क्रोध उत्पन्न करती है।

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान्।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः।।८०७।।
(विदुर)

– जिन लोगों के चित्त पापों से आच्छन्न हैं, वे दूसरों के मंगलमय गुणों को जानने की वैसी इच्छा नहीं रखते, जैसी कि उनके दोषों को जानने की इच्छा करते हैं।

सत्य के अभ्यास का साहस करो : विवेकानन्द

'वही समाज सबसे श्रेष्ठ है, जहाँ सर्वोच्च सत्य को कार्य में परिणत किया जा सकता है', यही मेरा मत है। यदि समाज इस समय उच्चतम सत्य को स्थान देने में समर्थ नहीं है, तो उसे इस योग्य बनाओ और जितना शीघ्र तुम ऐसा कर सको, उतना ही अच्छा। हे नर-नारियो ! उठो, आत्मा के सम्बन्ध में जाग्रत होओ, सत्य में विश्वास करने का साहस करो, सत्य के अभ्यास का साहस करो।

जब हम नीतिशास्त्र पर विचार करते हैं, तो हमें बड़ा अन्तर मिलता है। शायद यही एक विज्ञान है, जो इस संघर्ष का साहसपूर्ण अतिक्रमण करता है। क्योंकि नीतिशास्त्र एकता है, इसका आधार है प्रेम। वह इस विविधता पर दृष्टिपात नहीं करता। नीतिशास्त्र का एकमात्र उद्देश्य है, यह एकत्व और यह एकरूपता। आज तक मानव जाति नैतिकता के जिन उच्चतम विधानों की खोज कर सकी है, वे विविधता नहीं स्वीकार करते, उसकी खोज-बीन के निमित्त रूकने के लिए उनके पास समय नहीं है, उनका एक उद्देश्य बस वही एकरूपता लाना है। भारतीय मस्तिष्क – मेरा अभिप्राय वेदान्ती मस्तिष्क से है – अधिक विश्लेषक है और उसने समस्त विश्लेषण के परिणामस्वरूप इस एकत्व का पता लगाया और उसने एकत्व के इस एक भाव पर प्रत्येक वस्तु को आधारित करना चाहा।

परिवर्तन सदा 'अपने' ही अन्दर होता है। समस्त क्रमविकास में तुम सर्वत्र देखते हो कि प्राणी में परिवर्तन होने से ही प्रकृति पर विजय प्राप्त होती है। इस तत्त्व का प्रयोग धर्म और नीति में करो, तो देखोगे, यहाँ भी 'अशुभ पर जय' 'अपने' भीतर परिवर्तन के द्वारा ही होती है। सब कुछ 'अपने' ऊपर निर्भर रहता है। इस 'अपने' पर जोर देना ही अद्वैतवाद की वास्तविक दृढ़ भूमि है। 'अशुभ, दुख' की बात कहना ही भूल है, क्योंकि बहिर्जगत् में इनका कोई अस्तित्व नहीं है। इन सब घटनाओं में स्थिर भाव से रहने का यदि मुझे अभ्यास हो जाय, तो फिर क्रोधोत्पादक सैकड़ों कारण सामने आने पर भी मुझमें क्रोध का उद्रेक न होगा। इसी प्रकार लोग मुझसे चाहे जितनी घृणा करें, पर यदि मैं उससे प्रभावित न होऊँ, तो मुझमें उनके प्रति घृणा-भाव उत्पन्न ही न होगा।

नीतिशास्त्र सदा कहता है – 'मैं नहीं, तू।' इसका उद्देश्य है – 'स्व नहीं, नि:स्व:'। इसका कहना है कि असीम सामर्थ्य अथवा असीम आनन्द को प्राप्त करने के क्रम में मनुष्य जिस निरर्थक व्यक्तित्व की धारणा से चिपटा रहता है, उसे छोड़ना पड़ेगा। तुमको दूसरों को आगे करना पड़ेगा और स्वयं को पीछे। हमारी इन्द्रियाँ कहती हैं, 'अपने को आगे रखो', पर नीति शास्त्र कहता है – 'अपने को सबसे अन्त में रखो।'' इस तरह नीतिशास्त्र का सम्पूर्ण विधान त्याग पर ही आधारित है। उसकी पहली माँग है कि भौतिक स्तर पर अपने व्यक्तित्व का हनन करो, निर्माण नहीं। वह जो असीम है, उसकी अभिव्यक्ति इस भौतिक स्तर पर नहीं हो सकती, ऐसा असम्भव है, अकल्पनीय है।

सभी नीतिशास्त्रों का अनपवाद रूप से एक बड़ा दोष यह है कि उन्होंने उन साधनों का कभी उपदेश नहीं दिया, जिनके द्वारा मनुष्य बुरा करने से अपने को रोक सके। सभी नीतिशास्त्र कहते हैं कि 'चोरी मत करो।' ठीक है, लेकिन मनुष्य चोरी करता ही क्यों है? कारण यह है कि चोरी-डकैती, दुर्व्यव्यवहार आदि कुकर्म यांत्रिक सहज क्रियाएँ बन बैठे हैं। डकैती करनेवाले, चोर, झूठे तथा अन्यायी स्त्री-पुरुष, ये ऐसे इसलिए हो गए है कि अन्यथा होना उनके हाथ नहीं। सचमुच यह मनोविज्ञान के लिए एक बड़ी विकट समस्या है। मनुष्य की ओर हमें बड़ी उदारता की दृष्टि से देखना चाहिए। अच्छा बनना इतनी सरल बात नहीं है। जब तक तुम मुक्त नहीं होते, तब तक एक यंत्र के सिवा तुम और क्या हो? क्या तुम्हें इस बात पर अभिमान होना चाहिए कि तुम अच्छे मनुष्य हो? बिल्कुल नहीं। तुम इसलिए अच्छे हो कि तुम अन्यथा नहीं हो सकते। दूसरा मनुष्य इसलिए बुरा है कि अन्यथा होना उसके बस की बात नहीं। अगर तुम उसकी जगह होते, तो कौन जानता है कि तुम क्या होते? एक वेश्या या जेलबंद चोर मानो ईसा मसीह है, जो इसलिए सूली पर चढ़ाया गया है कि तुम अच्छे बनो। प्रकृति में इसी तरह साम्यावस्था रहती है। सब चोर और खूनी, सब अन्यायी और पतित, सब बदमाश और राक्षस मेरे लिए ईसा मसीह हैं।

सम्पादकीय

कूप-मण्डूकता का त्याग करो

एक उपनिषद है, जिसका नाम है माण्डूक्योपनिषद। मण्डूक से माण्डूक्य बना है। मण्ड्+उकण् = मण्डूक होता है। मण्डूक के कई अर्थ हैं, जिसमें एक अर्थ है – मेंढक। 'मण्डूक अनुवृत्ति प्लुतिः' का अर्थ होता है – 'मेंढकों की उछल-कूद', बीच-बीच में छोड़ देना, बीच-बीच में छोड़कर आगे फलांग जाना। संस्कृत शब्द कोष में मण्डूक-योगः का एक और बड़ा सुन्दर अर्थ दिया गया है, वह है – भाव समाधि का एक प्रकार जिसमें, साधक मेंढक की भाँति निश्चल होकर समाधिस्थ होता है।

जब साधक में मेंढक-वृत्ति आती है, तब वह मेंढक की भाँति कूद-कूदकर आगे बढ़ता जाता है। वह कूद-कूद कर भौतिक, सांसारिक वस्तुओं का त्याग करता जाता है और अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है, जब वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, तब मण्डूक-योग को प्राप्त होता है अर्थात् अपने लक्ष्य में जाकर स्थिर, अविचल हो जाता है।

बरसात में हम देखते हैं, बहुत से मेंढक अपने बिल या जल से बाहर आकर कीड़े खाने आते हैं, जैसे ही कोई व्यक्ति उनके पास जाता है, वे कूदकर अपने बिल या पानी में जाकर छिप जाते हैं। वे ही मेंढ़क पानी में जाकर द्रुत गति से तैरने लगते हैं। मेंढक का कूद-कूद कर आगे बढ़ना, मानो उसकी सीमितता से असीमितता की ओर आगे बढ़ने का संकेत है। मेंढक यदि कहीं कूप, तड़ाग, सरिता में है, तो उसे उसमें से कूदकर बाहर निकलकर समुद्र की ओर जाना चाहिए, तब वह समुद्र के अगाध, विशाल जल-क्रीड़ा का आनन्द ले पायेगा। लेकिन मेंढक जब एक कूप में सीमित हो जाता है, तो उसे कूप-मण्डूक कहते हैं। कूप-मण्डूक होना अच्छा नहीं। क्योंकि वह विशाल सरिता और समुद्र के जल-कल्लोल से वंचित हो जाता है।

कूप-मण्डूक के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो धर्ममहासभा में १५ सितम्बर, १८९३ को परस्पर धार्मिक मतभेद को दूर करने हेतु मेढक की एक बड़ी प्रेरक कहानी सुनायी थी, जो इस प्रसंग में उल्लेखनीय है, उसका सारांश प्रस्तुत है – एक कुएँ में बहुत समय से एक मेंढक रहता था। वह वहीं जन्मा और बड़ा हुआ। वह खा-पीकर मोटा हो गया। एक दिन एक समुद्री मेंढक उस कुँए में गिर गया। उसे देखकर वहाँ के मेंढक ने पूछा – ''तुम कहाँ से आये हो?'' ''मैं समुद्र से आया हूँ।'' समुद्री मेंढक ने उत्तर दिया। ''समुद्र ! कितना बड़ा है वह? क्या वह मेरे कुएँ इतना बड़ा है?'' इतना कहकर उसने कुएँ में एक किनारे से दूसरे किनारे तक छलाँग मारी। समुद्री मेंढक ने कहा – ''मेरे मित्र ! समुद्र की तुलना इस छोटे-से कुँए से कैसे कर सकते हो?'' तब उस कुँए के मेंढक ने एक दूसरी छलांग मारी और पूछा, ''तो क्या तुम्हारा समुद्र इतना बड़ा है?'' समुद्री मेंढक ने कहा, ''तुम कैसी मूर्खतापूर्ण बातें कर रहे हो ! क्या समुद्र की तुलना तुम्हारे कुँए से हो सकती है?'' तब कुएँ के मेंढक ने कहा, ''जा, जा ! मेरे कुँए से बढ़कर दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता। संसार में इससे बड़ा दूसरा कुछ नहीं है ! झूठा कहीं का ! अरे, इसे पकड़कर बाहर निकाल दो !'' स्वामीजी ने इस कहानी से समझाया कि हिन्दू, ईसाई, मुसलमान आदि अपने छोटे-से कुँए में बैठकर यही समझते हैं कि उनका कुँआ ही सारा संसार है। अतः उन्होंने सभी धर्मावलम्बियों को अपनी संकीर्णता को छोड़कर समुद्र सम उदार होकर सबसे प्रेम करने का सन्देश दिया।

स्वामीजी धार्मिक कूप-मण्डूकता की वृत्ति से मुक्त होने के लिये सभी धर्मावलम्बियों को परामर्श देते हैं। वे कहते हैं – ''यही कठिनाई सदैव रही है। मैं हिन्दू हूँ। मैं अपने कुएँ में बैठा यह समझता हूँ कि मेरा कुआँ ही सम्पूर्ण संसार है। ईसाई भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठे हुये यही समझता है कि सारा संसार उसी के कुएँ में है और मुसलमान भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा हुआ उसी को सारा ब्रह्माण्ड मानता है। मैं आप अमेरिकावासियों को धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि आप हमलोगों के इन छोटे-छोटे संसार की क्षुद्र सीमाओं को तोड़ने का महान प्रयत्न कर रहे हैं। मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में परमात्मा आपके इस उद्योग में सहायता देकर आपका मनोरथ पूर्ण करेंगे।''[१]

जैसे कूप-मण्डूक होना ठीक नहीं है, वैसे ही मानव में कूप-मण्डूकता की वृत्ति अच्छी नहीं है। आज भी मानव धार्मिक कूप-मंडूकता, सांस्कृतिक कूप-मंडूकता, वैचारिक कूप-मंडूकता आदि से आवेष्टित है। वह अपने ही विचारों, धर्म और संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ मानकर दूसरे से घृणा और द्वेष करता है और जीवन में अशान्ति को जन्म देता है। यह कूप-मंडूक-वृत्ति मानव को संकीर्ण बना देती है। संकीर्णता से कभी भी मानव को शान्ति नहीं मिल सकती, उसे कभी भी पूर्णत्व, पूर्णता की अनुभूति नहीं हो सकती, उसे उदात्त, पूर्ण, परमेश्वर का बोध नहीं हो सकता। इसलिए कूप-मंडूक वृत्ति सर्वथा त्याज्य है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''विकास ही जीवन और संकोच, संकीर्णता मृत्यु है। प्रेम ही विकास और स्वार्थपरता संकीर्णता है।'' अत: व्यक्ति को सदा-सर्वदा जीवन की ओर, विकास की ओर उन्मुख होना चाहिये, संकीर्णता और स्वार्थपता की ओर कदापि नहीं।

स्वामीजी का निम्नलिखित कथन धार्मिक संकीर्णता से निकलकर सर्वोच्च लक्ष्य की ओर अग्रसर होने को प्रेरित करता है। वे कहते हैं – हिन्दू के मतानुसार निम्नतम जड़-पूजावाद से लेकर सर्वोच्च ब्रह्मवाद तक जितने धर्म हैं, वे सभी अपने-अपने जन्म तथा साहचर्य की अवस्था द्वारा निर्धारित होकर उस असीम के ज्ञान तथा उपलब्धि के निमित्त मानवात्मा के विविध प्रयत्न हैं और यह प्रत्येक प्रयत्न उन्नति की एक अवस्था को सूचित करता है। प्रत्येक जीव उस युवा गरुड़ पक्षी की तरह है, जो धीरे-धीरे ऊँचा उड़ता हुआ तथा अधिकाधिक शक्तिसम्पादन करता हुआ, अन्त में उस भास्वर सूर्य तक पहुँच जाता है।''[२]

शिकागो की धर्म-महासभा में अपने-अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताकर अन्य धर्मों को छोटा दिखानेवाले धर्मानुयाइयों की धर्म-संकीर्णता पर प्रहार करते हुये स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की विशेषता का स्पष्ट उल्लेख कर अन्य धर्मावलम्बियों को धार्मिक संकीर्णता से मुक्त होने का आह्वान किया – ''हिन्दुओं की दृष्टि में समस्त धर्मजगत भिन्न-भिन्न रुचिवाले स्त्री-पुरुषों की, विभिन्न अवस्थाओं एवं परिस्थितियों में से होते हुये एक ही लक्ष्य की ओर यात्रा है, प्रगति है। प्रत्येक धर्म जड़भावापन्न मानव से एक ईश्वर का उद्भव कर रहा है और वही ईश्वर उन सबका प्रेरक है। तो फिर इतने परस्पर विरोध क्यों हैं? हिन्दुओं का कहना है कि ये विरोध केवल आभासी हैं। उनकी उत्पत्ति सत्य के द्वारा भिन्न अवस्थाओं और प्रकृतियों के अनुरूप अपना समायोजन करते समय होती है।

''वही एक ज्योति भिन्न-भिन्न रंग के काँच में से भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट होती है। समायोजन के लिये इस प्रकार की अल्प विविधता आवश्यक है। परन्तु प्रत्येक के अन्तस्तल में उसी सत्य का राज्य है। ईश्वर ने अपने कृष्णावतार में हिन्दुओं को यह उपदेश दिया है, प्रत्येक धर्म में मैं मोती की माला में सूत्र की तरह पिरोया हुआ हूँ।''[३]

स्वामीजी ने सार्वभौमिक धर्म की घोषणा करते हुये कहा – 'यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होना है, तो वह किसी देश या काल से सीमाबद्ध नहीं होगा। वह असीम ईश्वर के सदृश ही असीम होगा, जिसका वह उपदेश देगा, जिसका सूर्य श्रीकृष्ण और ईसा के अनुयायियों पर, सन्तों और पापियों पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेगा, जो न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध, न ईसाई, न इस्लाम, वरन् वह सबकी समष्टि होगा, किन्तु फिर भी जिसमें विकास के लिये अनन्त अवकाश होगा। जो इतना उदार होगा कि पशुओं के स्तर से किंचित् उन्नत निम्नतम घृणित जंगली मनुष्य से लेकर अपने हृदय और मस्तिष्क के गुणों के कारण इतना ऊपर उठ गये उच्चतम मनुष्य तक को, जिसके प्रति सारा समाज श्रद्धावनत हो जाता है और लोग जिसके मनुष्य होने में सन्देह करते हैं, अपनी बाहुओं से आलिंगन कर सके और उनमें सबको स्थान दे सके। वह धर्म ऐसा होगा, जिसकी नीति में उत्पीड़ित या असहिष्णुता का स्थान नहीं होगा, वह प्रत्येक स्त्री और पुरुष में दिव्यता को स्वीकार करेगा और उसका सम्पूर्ण बल और सामर्थ्य मानवता को अपनी सच्ची, दिव्य प्रकृति का साक्षात्कार करने के लिये सहायता देने में ही केन्द्रित होगा।''[४]

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में कूप-मण्डूकवृत्तियुक्त मतानुयायियों को उस वृत्ति का त्यागकर, उदार हो उदात्त विराट परमात्मा के परम आनन्द में निमग्न होने का आह्वान किया। किसी कवि की उक्तियाँ हैं –

छोड़ो कूपमंडूकवृत्ति को, जो तुम्हें बाँधती पल-पल।
उठो, उठो, हे देव-मनुज ! तोड़ो भवबन्धन शृंखल।।
यदि चाहते हो तुम बनना, महा महिपति भूप।
तो कभी नहीं संकीर्ण बनो, जैसे कूप-मंडूक।।

ooo

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य १/६ **२.** वही १/१८ **३.** वही, १/२० **४.** वही, १/ २०-२१

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी विशेष

धर्म, संस्कृति के संवाहक श्रीकृष्ण

राजकुमार गुप्ता, वृन्दावन

हिन्दू धर्म को सनातन धर्म कहा जाता है। सनातन अर्थात् सर्वदा रहनेवाला। धर्म संस्कार प्रदान करता है, जो जीवन जीने के आधार-स्तम्भ बनते हैं। धर्मानुसार जीवन जीने की कला ही संस्कृति कहलाती है। संस्कृति यानी धर्म द्वारा प्रदत्त संस्कारों का समूह, यह रीतियों, परम्पराओं, मान्यताओं एवं सामाजिक आदर्शों के रूप में दृष्टिगोचर होता है। सृष्टि का निर्माण प्रकृति के तीन गुणों सत्त्व, रजस् व तमस् से हुआ है। प्रकृति के तीनों गुणों में सतत संघर्ष चलता रहता है। दो गुणों को दबाकर किसी एक गुण की प्रधानता एक समय पर रहती है। यह सब काल के प्रभाव से होता है। जब सतोगुण को दबाकर रजोगुण व तमोगुण बढ़ जाते हैं, तब सतोगुण के साथ-साथ धर्म व संस्कृति का भी ह्रास होने लगता है। ऐसे समय लोग पारम्परिक मूल्यों एवं संस्कारों को छोड़कर केवल इन्द्रियों के दास हो जाते हैं। धन एवं उससे प्राप्त होनेवाली वस्तुओं की प्रधानता हो जाती है। सच्चरित्रता, संयम, नियम तथा सात्त्विकता गौण हो जाती है। इसी को कहते हैं धर्म व संस्कृति का अध:पतन। ऐसे ही समय पर भगवान का अवतार होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीरामचरित-मानस में लिखते हैं –

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध शरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।
(१/१२०/६,८)

भगवान श्रीकृष्ण के अवतार में भी यही परिस्थितियाँ कारण बनीं। बहुत से राक्षस राजाओं के रूप में उत्पन्न होकर धर्म को निर्मूल करने में लगे थे। उन्होंने बड़ी-बड़ी सेनायें एकत्र कर रखी थीं। ये पृथ्वी पर भार स्वरूप हो गये थे। तभी देवकी माँ के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र श्रीकृष्ण का अवतार हुआ।

भगवान श्रीकृष्ण धर्म व संस्कृति के सच्चे अर्थों में संवाहक थे। संवाहक यानी सम्यक् प्रकारेण वाहक। केवल अपने जीवन काल तक ही नहीं, बल्कि उसके बाद भी धर्म व संस्कृति का शीघ्र ही ह्रास न होने पाये, ऐसी व्यवस्था करके गये। इस लेख में हम ऐसे ही कुछ कार्यों की विवेचना करेंगे।

१. गीता का उपदेश – युद्ध क्षेत्र में अर्जुन को दिया गया गीता का उपदेश श्रीकृष्ण को धर्म व संस्कृति के सच्चे संवाहक के रूप में प्रस्तुत करता है। सनातन धर्म के शाश्वत मूल्यों का ऐसा सशक्त वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। श्रीमद्भगवद्-गीता आज भी सभी जातियों, सम्प्रदायों को धर्म का पाठ पढ़ा रही है। इसके मनन निदिध्यासन द्वारा अनगिनत लोग परम शान्ति पा चुके हैं, पा रहे हैं और पाते रहेंगे।

२. महाभारत युद्ध – श्रीकृष्ण के समय तक भारतीय संस्कृति किस सीमा तक बीमार हो चुकी थी, इस बात का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि धर्मावतार युधिष्ठिरजी भी द्यूत क्रीड़ा जैसा निन्दित कार्य करते दिखाई देते हैं। भगवान के बड़े भाई शेषावतार बलरामजी अपने पौत्र अनिरुद्ध के विवाह में जुआ खेलते दिखते हैं। यह सांस्कृतिक पतन की पराकाष्ठा है। अर्थात् द्यूत क्रीड़ा को समाज ने स्वीकार कर लिया था। उपरोक्त दोनों घटनाओं के फलस्वरूप भगवान ने महाविनाश की लीलायें कराकर महाभारत युद्ध एवं रुक्मीवध द्वारा यह संदेश दिया कि द्यूत-क्रीड़ा कितनी हानि कर सकती है ! उपरोक्त दोनों घटनायें धर्म व संस्कृति-रक्षण के लिये भगवान कृष्ण द्वारा किए गये महाप्रयास हैं। भगवान का '**द्यूतं छलयतामस्मि**' कहना इस प्रयास की शाब्दिक अभिव्यक्ति है।

३. जरासंध के कैदी राजाओं की मुक्ति – जरासंध द्वारा बन्दी बनाये गये लगभग २०,००० राजाओं को मुक्त करना, उनके राज्य लौटाना व उन्हें सम्मानपूर्वक राजसूय

यज्ञ में बुलाना, भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा धर्म व संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन के लिये किए गये महान कार्य के रूप में देखा जाना चाहिए। जहाँ बीस हजार राजा धर्म-मर्यादा का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा करेंगे, वहाँ धर्म की मर्यादा उच्चतम स्तर पर अवश्य दिखाई देगी। जियो और जीने दो, सहिष्णुता एवं उदारता यहाँ चरम पर अभिलक्षित होती है।

४. भौमासुर की वन्दिनी राजकुमारियों से विवाह – भौमासुर द्वारा १६,१०० राजकुमारियों का अपहरण करके उन्हें बन्दी बना लिया गया था। भगवान ने भौमासुर का वध करके उन राजकुमारियों को मुक्त कराया। उन मुक्त हुईं राजकुमारियों की स्थिति पर विचार कीजिए। समाज तो क्या उनके परिवार जन उन्हें स्वीकार करने में हिचकिचाते ! विवाह उनसे कौन करता ! ऐसी स्थिति में उन्हें छोड़ देना समाज में चारित्रिक अध:पतन की स्थिति पैदा करता। परन्तु योगेश्वर श्रीकृष्ण ने एक ही समय में १६,१०० रूप बनाकर उनसे विवाह किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने न केवल उन राजकुमारियों को व उनके परिवारों को सुख प्रदान किया, बल्कि '**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:**' इस स्मृति-वाक्य को चरितार्थ किया। संस्कृति सम्वर्धन का ऐसा अन्य उदाहरण मिलना दुर्लभ है।

५. यदुकुल का नाश – पृथ्वी से अन्तर्धान होने से पूर्व श्रीकृष्ण ने देखा कि उनके परिवार के लोग धर्म-मर्यादा का अतिक्रमण कर रहे हैं। यदि इनको ऐसे ही छोड़ दिया गया, तो शीघ्र ही ये पृथ्वी के भार हो जायेंगे। उनको ब्राह्मणों के प्रति अभद्रता करने के कारण शाप के बहाने से नष्ट करा दिया, ताकि भगवान के पधारने के बाद ये आततायी बनकर धर्म व संस्कृति का ह्रास न कर सकें।

६. उद्धवजी को उपदेश – श्रीकृष्ण ने धराधाम से प्रयाण करते समय उद्धवजी को धर्म का ऐसा उपदेश दिया, जिसे मनुष्य अपने जीवन में आचरण कर सके। भगवान ने भक्ति, योग, उपासना व ज्ञान का प्रयोगात्मक रूप बताया। इससे पहले यह ज्ञान उपनिषदों में गूढ़ रूप से छिपा हुआ था। यह सैद्धान्तिक ज्ञान था, जो सामान्य मानवों की समझ से परे था। इस ज्ञान को साधारण भाषा में प्रयोगात्मक बनाकर उद्धवजी के ब्याज से जन-साधारण को सुलभ बनायाा। इसी ज्ञान को १९वीं शताब्दी में स्वामी विवेकानन्द जी ने समयानुकूल बनाकर बीमार हिन्दू संस्कृति में अभिनव प्राण-संचार करने में प्रयोग किया।

उपरोक्त अवलोकन करने से स्पष्ट है कि भगवान कृष्ण धर्म व संस्कृति के सच्चे संवाहक हैं। उनके द्वारा उपदेशित 'गीता' आज भी धर्म व संस्कृति का संवहन कर रही है। मर्यादाओं, वर्जनाओं से बाहर जाना जीव मात्र का स्वभाव है। बन्धन में कोई नहीं रहना चाहता। यही कारण है कि बलवान निर्बलों का, धनी निर्धनों का शोषण अपने शरीर सुख व अहंकार की पुष्टि के लिए करने लगते हैं, धर्म व संस्कृति को तिलांजलि दे देते हैं। ऐसे लोगों को नष्ट कर देने से कुछ काल के लिये धर्म की प्रतिष्ठा होती है। पुन: वैसे ही दूसरे लोग रक्तबीज की तरह पैदा हो जायेंगे। इसीलिए धर्म की रक्षा के लिए भगवान को बार-बार अवतार लेकर आना पड़ता है। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने जीवन-काल में धर्म व संस्कृति की रक्षा की। वे आनेवाले समय के लिये श्रीमद्भगवद्गीता विरासत में दे गये हैं। इसी को औषधि बनाकर आदिशंकराचार्य जैसे महामानवों ने बीमार धर्म व संस्कृति की चिकित्सा की। इसीलिये हमारा धर्म सनातन है। कालक्रम से इसमें ह्रास होता है, यह बीमार होता है, पर कभी भी मरता नहीं है। भगवान का आश्वासन है –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

– हे अर्जुन ! जब जब धर्म की हानि होती है, तब तब मैं धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिये अवतरित होता हूँ। भगवान की यह वाणी आशा की किरण जगा रही है। ऐसे धर्म व संस्कृति के सम्वाहक भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में शत-शत नमन ! ○○○

कविता

सुन लो मेरी पुकार

सदाराम सिन्हा 'स्नेही'

ओ बंशी वाले कन्हैया, सुन लो मेरी करुण पुकार ।
बीच भँवर में फँसा हुआ, अब कर दो बेड़ा पार ।।
इस जगत में मेरी बातें, सुनने वाला कोई नहीं ।
मैं जैसा भी हूँ तेरा हूँ, प्रभु कर लो स्वीकार ।।
मैं जीवन की राह भटक गया, लोभ मोह में आकर ।
आया तेरी शरण में कर दो जीवन का उद्धार ।।

शिक्षक दिवस विशेष

भारतीय शिक्षा का मूल तत्त्व

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

संसार में जानने का क्या कोई अन्त है? 'अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रम्।'' और मनुष्य की आयु तो स्वल्प है। इस स्वल्प आयु का आधा भाग निद्रा में बीत जाता है, शेष आधा भाग अनेक प्रकार के भोगों में चला जाता है। इसलिए इतना जानने का समय कहाँ है? मनुष्य की बुद्धि में न्यूनाधिक्य रहता है, रोग तथा आमोद-प्रमोद रहता है। यदि कभी बुद्धि का उत्कर्ष हो, अन्य अनेक सुविधा-सुयोग मिल जाये, तब भी एक-एक करके संसार के अनन्त विषयों का ज्ञान प्राप्त करते-करते मनुष्य की सारी आयु भी पूरी नहीं पड़ती।

तो फिर उपाय क्या है?

यदि किसी एक विषय का ज्ञान प्राप्त किया जाये और उसी ज्ञान के प्रकाश में सब विषयों का ज्ञान हो जाये, तो कोई खराब बात नहीं है। जैसे पहले टेलीफोन यंत्र से केवल बातचीत की जा सकती थी। आजकल उस यंत्र में क्या नहीं है? गाना-बजाना, हिसाब-किताब रखना, फोटो खींचना, संदेश भेजना, खेल खेलना, सिनेमा आदि और भी कितना क्या-क्या? एक यंत्र में इतने विषयों का समावेश। इसी प्रकार एक ज्ञान से सब ज्ञान पाया जा सकता है कि नहीं?

यही प्रश्न उपनिषद के ऋषि के निकट किया गया था – **'कस्मिन् नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।**' – ऐसा क्या है, जिसे जानने से सब जाना जा सकता है? उत्तर में ऋषि परा और अपरा दो प्रकार की विधाओं का उल्लेख करके परा विद्या की सहायता से सभी चीजों का ज्ञान प्राप्त होता है, यह संकेत करते हैं।

यह परा विद्या क्या है? परा विद्या सभी विधाओं (अपरा विद्या) का आधार स्वरूप है। इस संसार की जितनी विद्याएँ हैं, जितना ज्ञान है, सब वहीं से नि:सृत होता है। कहा जा सकता है कि सारी सांसारिक विधाएँ उसी पराविद्या की कण भर ही हैं।

वृक्ष कहने से जड़, तना, शाखा-प्रशाखा, पत्ता, फूल-फल सब लेकर वृक्ष का बोध होता है। पत्तों, फल-फूल के ज्ञान से वृक्ष का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं होता, केवल अंशमात्र जानकारी मिलती है। उसी प्रकार संसार की समस्त विद्याएँ आंशिक ज्ञान दे सकती हैं, समग्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए पराविद्या का आश्रय लेना होगा। उस एक अद्वितीय परम सत्ता का ज्ञान है परा ज्ञान।

'आत्मानं विद्धि' – स्वयं को जानो। हमारी स्वयं की सत्ता अत्यन्त निकटवर्ती है। अति निकट होने के कारण ही वह दिखाई नहीं पड़ती। दूर की वस्तु, दूसरे की वस्तु हमारी दृष्टि को आकर्षित करती है। इसीलिए हम दूर तक अपनी दृष्टि डालते हैं, बाहरी विश्व में ज्ञान प्राप्त करने हेतु दौड़ पड़ते हैं, किन्तु वह ज्ञान हमें पूर्णता नहीं देता, तृप्ति नहीं देता, शान्ति नहीं देता, सुख नहीं देता।

उस बाहरी विश्व का ज्ञान समग्र ज्ञान नहीं होता, क्योंकि वह जिस आधार पर गृहीत होगा, उस आधार का ज्ञान हमें नहीं है। हम कहते हैं, 'मैं ज्ञान प्राप्त करूँगा।' इसी उद्देश्य से हम ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। किन्तु जो 'मैं' ज्ञान प्राप्त करेगा, उस 'मैं' के सम्बन्ध में हमारी कोई धारणा ही नहीं है।

यह 'मैं' कौन है? यह 'मैं' कहाँ रहता है? उसे कैसे जाना जा सकता है – 'आत्मानं विद्धि' का 'आत्मा' कौन है? यह प्रश्न युग-युगान्तर से चला आ रहा है।

'मैं' कहने से पहले हमारे मन में इस हाड़-मांस के शरीर का विचार आता है। इसका एक नाम है, रूप है, धन है, गौरव है, सम्बन्ध है, यह सब मिलाकर एक 'मैं' है। उस मैं को तो हम सभी जानते हैं। उसका ज्ञान कराने के लिए ऋषियों का इतना आकुलतापूर्ण आह्वान क्यों होगा?

प्रसिद्ध वस्तु को नया बनाकर जानने या ज्ञान कराने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

इसके बाद हाथ-पैर आदि इन्द्रियाँ? स्थूल शरीर की अपेक्षा इनकी सूक्ष्मता रहती है, यह ठीक ही है। किन्तु वह भी हम सभी जानते हैं। इन्द्रियों के विषय-शब्द, स्पर्श आदि भी प्रसिद्ध वस्तुएँ हैं।

इसके बाद आता है मन। मन कहने से हम उसे हाथ पर रखकर नहीं दिखा सकते। इसकी सूक्ष्मता और भी अधिक है। किन्तु मन में जो संशय उठता है, उसकी अनुभूति सबको है। इसलिए वह भी ज्ञात विषय है।

मन से भी सूक्ष्मतर है बुद्धि। बुद्धि बाहरी विश्व के हमारे ज्ञान का निश्चित विचार और धारणा करती है। किन्तु निश्चय बोधक ज्ञान के रूप में हमारे बीच वह भी प्रसिद्ध है।

छान्दोग्य उपनिषद में प्रजापति कहते हैं, **– य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति ... एतदमृतम-भयमेतद् ब्रह्म इति** – आँख से यह जो पुरुष दिखाई पड़ता है, यही आत्मा है। यह आत्मा ही अमृत, अभय है। देवराज इन्द्र और असुरराज विरोचन दोनों ने ही यह उपदेश सुना। आँखों द्वारा दृष्टिगत अपनी शरीर की छाया को ही आत्मा, अमृत, अभय बोध करके स्थूल बुद्धि असुरराज विरोचन संतुष्ट हो गए थे तथा असुर-समाज में लौटकर उसी शरीर के पालन-पोषण हेतु सबको उत्साहित करने लगे। फलस्वरूप असुर लोग 'आत्मानं विद्धि' लक्ष्य तक नहीं पहुँच सके।

देवराज इन्द्र ने सूक्ष्म विचार की सहायता से, अपने विवेक की शक्ति से परखकर देखा कि शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि सभी जड़ विनाशशील हैं, इसमे से एक के ज्ञान से दूसरे का ज्ञान नहीं हो सकता, अमृत, अभय नहीं हो सकता। इसलिए ये सब आत्मा नहीं हैं, ये सब एक आत्मतत्त्व नहीं हैं, ये सब पराविद्या के विषय नहीं हैं। वे वापस आकर प्रजापति के उपदेश के अनुसार अपनी साधना की सहायता से सर्वज्ञान का आधार, परम ज्ञान, सर्वविद्या की मूल पराविद्या, आत्मा को जान गए।

सभी मनुष्यों की आकृति या आकार तो एक जैसा ही है। किन्तु बुद्धि की विचारशीलता की भिन्नता के द्वारा अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग वस्तु को आत्मा या 'मैं' कहकर धारणा करता है। असली 'मैं' को न जानकर संसार में सुख-शान्ति पाने से वंचित रहना पड़ता है।

यह 'मैं' कहाँ रहता है?

– तुम कौन हो?

– मैं अमुक चन्द्र हूँ। मैं अमुक का पुत्र, अमुक का पिता तथा अमुक का भ्राता हूँ। मैं अमुक कार्यालय का कर्मचारी हूँ, मैं अमुक विद्यालय का शिक्षक हूँ इत्यादि। सर्वत्र 'मैं' का ही प्रयोग होता है। यहाँ मैं नाम, सम्बन्ध, पद-प्रतिष्ठा इत्यादि के साथ मिलकर एक रहता है। इसीलिए 'मैं' को ठीक से समझा नहीं जाता। जब हम कहते हैं – मेरा शरीर, मेरा पैर, तब शरीर, हाथ-पैर इत्यादि से भिन्न एक 'मैं पन' का बोध होता है। जिस प्रकार मेरा कपड़ा, मेरी पुस्तक, मेरी कलम कहने से 'मैं' में भी कपड़ा इत्यादि की भिन्नता स्पष्ट समझी जाती है, उसी प्रकार थोड़ा सूक्ष्म विचार करने पर हम देखते हैं कि 'मैं अमुक चन्द्र' कहने से वह नाम विशेष मैं नहीं हूँ। बल्कि वह नाम विशेष मेरा है। इसलिए नाम के साथ 'मैं' की स्पष्ट पृथक्ता समझी जा सकती है।

अत: मैं की स्थिति कहाँ है? शरीर, मन, बुद्धि, नाम, रूप सम्बन्ध सब कुछ का अधिष्ठान और मूलाधार मैं ही है। मैं सबके भीतर और सबके बाहर भी है। 'तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत:।' जैसे एक पात्र में तेल रखा हुआ है। तेल का आधार वह पात्र-विशेष तब तेल के साथ है। फिर तेल रहित अवस्था में वह पात्र-विशेष ही रहता है। आधार सभी अवस्थाओं में एक जैसा रहता है, आधेय सभी काल में एक जैसा नहीं रहता। कभी तेल, कभी दूध, कभी जल आधेय है, किन्तु आधार एक ही है। आत्मा या हमारा 'मैं' सभी अवस्थाओं में एक है। जब जिस वस्तु के साथ उसकी अवस्थिति रहती है, तब उसी वस्तु के साथ उसका 'मैंपन' भी रहता है – मैं देह हूँ, मैं मन हूँ, मैं अमुक हूँ, मैं पिता हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ इत्यादि। देह, मन, बुद्धि, नाम, रूप, सम्बन्ध, जाति इत्यादि सभी प्रकार के ज्ञान के आधार रूप में 'मैंपन' ही रहता है।

जीव के इस शरीर में रूप के आधार में आत्मा या 'मैं' अधिष्ठित है। शेष सब 'मैं' उसी 'मैं' का ही प्रतिरूप है। वह सब 'मैं' क्षुद्र 'मैं' या 'कच्चा मैं' है। विश्वस्वरूप जो 'मैं' है, वह पक्का 'मैं' है। जब क्षुद्र 'मैं' या 'कच्चा मैं' का विलय 'पक्का मैं' में होता है, तभी सच्चे 'मैं' का ज्ञान होता है।

इसी असली 'मैं', पक्का 'मैं' को जानने के लिए ही ऋषियों ने आह्वान किया – **'आत्मानं विद्धि', 'तमेवैकं**

विजानथ अन्या वाचो विमुञ्चथ।' वह 'मैं' दूर नहीं है, बाहर नहीं हैं, वह 'हमारे अन्दर' है।

तब प्रश्न उठता है कि इस 'मैं' को जानने का उपाय क्या है? श्रुति कहती है, '**आत्मा वा अरे द्रष्टव्य-श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।**' कौन आत्मा है, कौन 'मैं' है, पहले इसे जानना होगा, गुरु के मुख से सुनना होगा। उसके बाद युक्ति-विचार की सहायता से उसे बुद्धि में स्थित करना होगा। इसके बाद एकाग्रता की सहायता से गहराई में डुबकी लगानी होगी। श्रद्धा चाहिए, विश्वास चाहिए, एकाग्रता चाहिए।

नचिकेता ने शास्त्र और गुरुवाक्य में श्रद्धा-विश्वासपूर्वक ब्रह्मविद्या के आचार्य यमराज के पास जाकर इस 'मैं' का ज्ञान प्राप्त किया था। सत्यकाम ने सत्य के प्रति अविचल निष्ठा और गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा के बल पर उस 'मैं' को जाना था। संसार के सभी कर्तव्यों को करते हुए भी सभी विद्याओं के आधारस्वरूप आत्मज्ञान की सहायता से अन्तर में एक असीम अनन्त शक्ति की अनुभूति की थी। उस शक्ति के पास जाने में मृत्यु को भी भय लगता है। इसलिए वे लोग जीवनकाल में भी अमृतत्व में अधिष्ठित हो गए थे।

श्रीभगवान अर्जुन को उसी तत्त्व को पाने के उपाय के रूप में निर्देश करते हैं, 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। – उसे प्रणिपात (समर्पण), परिप्रश्न और सेवा के द्वारा जानो।

प्रणिपात अर्थात् – प्रकृष्ट रूप से विनीत होना होगा। नम्रता चाहिए। अहंकार का विलय होना चाहिए। शिक्षा प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम नम्र, विनयी, निरहंकार होना होगा। जो यह सोचता है कि मैं सब जानता हूँ, उसका कुछ होना बचा नहीं है। जो यह सोचता है कि मैं थोड़ा-कुछ जानता हूँ, उसे ही ठीक-ठीक जानकारी मिलती है। श्रद्धा रहने से नम्रता सम्भव हो पाती है। श्रद्धा और नम्रता अविच्छिन्न रूप से आपस में जुड़े हैं, एक-दूसरे के परिपूरक हैं। इसलिए पहले चाहिए श्रद्धा – प्रणिपात।

दूसरी बात, जिज्ञासा होनी चाहिए। जिज्ञासा रहने से व्यक्ति प्रश्न करेगा, जीतने की इच्छा से नहीं, जानने की इच्छा से। जिसे भूख लगी है, वही भोजन की खोज करता है, मस्तक पर आग जलने का अनुभव होने पर ही आग बुझाने के लिए जल खोजने हेतु व्यक्ति दौड़-भाग करता है, बन्धन का अनुभव होने पर ही मुक्ति की आकांक्षा जाग्रत होती है। **निर्गच्छति जगज्जालात् पिंजरादिव केशरी।** इसी तरह, इच्छुक व्यक्ति के समक्ष आत्मा स्वयं को अभिव्यक्त (अनावृत) कर देती है। प्रबल आकांक्षा जाग्रत होने पर 'तभी कहीं से कोई आकर उसे बता देता है कि ऐसा-ऐसा करो'। इसलिए जानने की इच्छा, जिज्ञासा, परिप्रश्न रहना चाहिए।

तीसरी बात कही गई – 'सेवया' – सेवा द्वारा। सेवा दो प्रकार से – पहले ज्ञानदाता गुरु को सेवा द्वारा प्रसन्न करना होता है, संतुष्ट करना होता है। संतुष्ट गुरु तब शिष्य को विद्या देते हैं। दूसरे, ज्ञातव्य विषय की सेवा करनी होती है। रोज उसमें मन को लगाना होता है। जितनी ही यह सेवा, अविरत सेवा की जाती है, उतना ही तद्विषयक ज्ञान के सारे आवरण ज्ञाता के समक्ष खुलते जाते हैं। परिणामस्वरूप ज्ञाता-ज्ञातव्य विषय का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करता है। **यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः** – उसको जो वरण करता है, वह उसे प्राप्त करता है। ○○○

कविता

कृष्ण प्रभू का यश-गायक हूँ

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

कृष्ण प्रभू का यश-गायक हूँ, कृष्ण प्रभू सब सुख-आधार।
कृष्णनाम के नित्य जपन से, कटते हैं भवबंध असार।।
शोकहारि वृन्दावन-भूषण, गोपवृन्द जिनके अभिसार ।
सबके प्रिय श्यामल सुन्दर हैं, करते हैं भवसागर पार।।
पद्मपुष्प समसुन्दर मुख है, देहकान्ति हरती अँधियार।
धेनु चराते वेणु बजाते, हैं वे सब हृदयों के हार ।।
कालिंदीतट लीला करते, हिय में भरकर प्रेम अपार ।
नटवर नागर ज्ञान-विभाकर, कृष्ण प्रभू हैं परम उदार ।।
परम ब्रह्म परमात्मा वे हैं, लेकर आये नर-अवतार ।
दुष्टों को दंडित करते हैं, हरते हैं पृथिवी का भार ।।
नानाविध लीलाएँ करते, भक्तजनों को देते प्यार ।
प्रणतजनों पर किरपा करके, लेते योग-क्षेम का भार।।
धीर-वीर मनमोहन सबके, फैलाते हैं प्रेम-बयार।
त्रिविध ताप को नित हरकर वे, सींचे उर में अमृतधार ।।
जिनके पुण्य चरित-चिन्तन से, जीवन का होता उद्धार ।
वही कृष्णप्रभु मेरे प्रियवर, वे ही हैं मम प्राणाधार।।

हृदय के विस्तार से मनुष्य का उद्धार

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

मौलिक बात याद रखनी है। मनुष्य का मन संतुलित होना चाहिए। मनुष्य में भगवान ने स्वाधीनता दी है। यदि हम अपने ऊपर नियन्त्रण नहीं करेंगे, तो देह मनुष्य का रहेगा, लेकिन आचरण पशुओं जैसा हो जायेगा। हमारे जीवन में नियन्त्रण, संयम होना चाहिए। भगवान ने हमें बुद्धि दी है, तो विवेक से अच्छे-बुरे का विचार करना है। हमें घर में सुविधा मिली है, तो हम क्या करें? ईश्वर ने हमें सुविधाओं का उपयोग करने के लिए स्वाधीनता दी है। मनुष्य की बुद्धि के साथ विवेक भी है। मनुष्य के जीवन में विकास और विवेक का अर्थ है कि वह स्वयं अपना विकास कर सकता है। विवेक ही हमारे उन्नत जीवन का आधार है। जब विवेक जाग्रत होता है, तब वह अच्छे-बुरे का विचार कर अच्छा ही सोचता है, अच्छा ही करता है। सुविधाओं में संस्कार का बहुत महत्त्व है। अच्छा होने के लिये संयम चाहिये। जो संतुलित व्यक्ति है, वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगता है। मनुष्य में यह शक्ति है कि वह अपने आप में सुधार कर सकता है। मनुष्य शेर के समान भी हो सकता है और गाय भी हो सकता है।

सब सुविधा होने के बाद भी मनुष्य में विकृति आती है। जब विवेक जागता है, तब उसकी रक्षा करता है। खाने में कोई दोष नहीं, लेकिन उसमें दासता नहीं होनी चाहिए। ईश्वर की योजना में मनुष्य बहुत सुन्दर श्रेष्ठ है। इंद्रियों को मिलनेवाले सुख से अधिक सुख मन का है। विवेक जागृत रहता है, तब व्यक्ति भगवान को भोग लगाकर बच्चों को बाँटकर खाता है। लेकिन लोभी व्यक्ति पहले अपना विचार करेगा, बाद में दूसरों का। इन छोटी बातों में हमारी पहचान होती है। यदि हमारा विवेक जाग्रत रहेगा, तब मनुष्य अपनी सुविधाओं को भी दूसरे को देना चाहता है। आध्यात्मिकता यही है। स्वामीजी कहते हैं कि वही जीते हैं, जो दूसरों के लिए जीते हैं, बाकी लोग तो जीते जी मरे हुये हैं।

मन अच्छा रहने से सब कुछ अच्छा हो जाता है। हृदय का विस्तार होने से मनुष्य का उद्धार होता है। मनुष्य का विकास तब होता है, जब उसे लगने लगे कि मुझे जो सुविधा मिली है, वह सबको मिलनी चाहिए। जब हम मन पर ध्यान रखेंगे, तब हमारे मन को शान्ति मिलेगी। हमारा पहला कर्तव्य होता है कि हम अपनी सम्पदा से दूसरे की सहायता कर सकें। जब हम उपकार के बदले प्रत्युपकार चाहते हैं, तब हमारा विकास रुक जाता है, हम निराश हो जाते हैं। जब जीवन में हम दूसरों की नि:स्वार्थ भाव से सहायता करेंगे, तब हमारे हृदय का विकास होगा, हमारे मन में शान्ति आयेगी। दूसरे की सुविधाओं का पहले चिन्तन करें, तब शान्ति मिलेगी। जब व्यक्ति परिवार में दूसरों के लिये पहले सोचता है, अपने लिये बाद में तब उसका परिवार स्वर्ग बन जाता है। जो परिवार के सुख में अपना सुख मानता है, वह सुखी रहता है। ○○○

कविता

ओ वंशीवाले...

आनन्द तिवारी 'पौराणिक'

सुन लो मेरी विनती ओ वंशीवाले
श्वास-श्वास सब पूर्ण समर्पण जीवन तेरे हवाले ।।
मथुरा में जन्मे गोकुल गाँव पधारे,
नन्द यशोदा के कहाये नयनों के तारे ।
ग्वाल-बाल संग माखनचोरी ऊखल आप बधाये,
उद्धार पूतना का कर कालिया नाग मर्दन कर घर आये ।
चीरहरण गोवर्धनधारण महारास रचानेवाले ।
श्वास-श्वास सब पूर्ण ...
पापी कंस चाणूर संहारे, द्वारिका धाम बसायो,
दीन सुदामा संगे प्रभुजी, मित्र धर्म निभायो ।
स्वार्थ भरे सारे जग नाते, अन्त काम न आते,
करुणा करके नाथ तुम्हीं, भवसागर पार लगाते ।।
राधावल्लभ हे दयानिधि, करतब तेरे निराले ।
श्वास-श्वास सब पूर्ण समर्पण जीवन तेरे हवाले ।। ...

जीवन में शिक्षक का महत्त्व

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

शिक्षक दिवस विशेष

बच्चो, आज हम ५ सितम्बर को मनाये जानेवाले बहुत महत्त्वपूर्ण दिन 'शिक्षक दिवस' के बारे में बात करेंगे, जो डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। यद्यपि जीवन की प्रारम्भिक गुरु सबकी माँ होती है, तथापि जीवन को अनुशासित, सफल और उज्ज्वल बनाने के लिए एक शिक्षक का बहुत बड़ा योगदान होता है। बच्चो, आओ एक छोटे-से उदाहरण के द्वारा इसे समझते हैं। जैसे हीरा बरसों कोयले की खान में पड़ा रहता है, लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं होता। वह बिल्कुल मूल्यहीन होता है। जैसे ही जौहरी हीरे को तराशता है, तो उसकी चमक धीरे-धीरे बाहर निकल कर आती है और वह हीरा मूल्यवान हो जाता है। कोयला को हीरा बनाने में बहुत परिश्रम और संघर्ष करना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार शिक्षक भी बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए बहुत परिश्रम और संघर्ष करते हैं। शिक्षक और शिक्षा दोनों ही हमारे जीवन और समाज के आधार हैं। बच्चो, शिक्षक के बिना हम शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते और ज्ञान के बिना हमारा जीवन पशुतल्य हो जायेगा। शिक्षक हमें शिक्षा के द्वारा सच्चा मार्ग दिखाकर अच्छा मनुष्य बनने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

बच्चो आओ, आज हम ऐसे व्यक्तित्व के बारे में जानते हैं, जो कर्नाटक बैंगलोर से हैं, जिनका नाम है हरेकाला हजप्पा। ६८ साल के हजप्पा को 'पद्मश्री पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। हरेकालाजी अपनी एक फल की दुकान चलाते हैं। शिक्षा का महत्त्व समझते हुए अपनी दुकान से

प्रतिदिन होने वाली कमाई १५० रुपये से गाँव में पढ़ रहे बच्चों के लिए स्कूल बनवाया। हरेकाला हजप्पा का पढ़ाई से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं था, वे कभी स्कूल नहीं गये। उन्होंने बताया कि एक बार उनकी दुकान पर फल खरीदने के लिए विदेशी पर्यटक आये और संतरे का मूल्य पूछने लगे। हरेकालाजी को उनकी भाषा समझ में नहीं आयी और तब पर्यटक उनकी दुकान से चले गये। उस दिन उन्हें शर्मिंदगी महसूस हुई कि मुझे

यह भाषा आनी चाहिए थी और तभी उन्हें गाँव में स्कूल बनाने का विचार आया। इसके बारे में उन्होंने गाँव के लोगों से चर्चा की और अपने फल की दुकान से १५० रुपये प्रतिदिन बचाकर अपने गाँव निपाडापू में १ एकड़ जमीन खरीदी तथा शासन की सहायता से प्राइमरी स्कूल बनवाया।

बच्चों को और अच्छी शिक्षा प्राप्त हो सके इसके लिए वे जिला मुख्यालय जाते और अधिकारियों से अच्छी शिक्षा देने के लिए बात करते। हरेकालाजी की यह मेहनत रंग लाई और जिला प्रशासन ने वर्ष २००८ में मैंगलोर के निकट स्थित उनके ग्राम निपाडापू में जिले का १४वाँ स्कूल खोल दिया। स्कूल की स्थापना के बाद हरेकालाजी हर रोज सुबह जल्दी उठकर स्कूल की साफ-सफाई करते और बच्चों के पीने के लिए पानी उबालते। वह स्कूल से इतना जुड़ चुके थे कि बच्चों की सुख-सुविधा का ध्यान रखते। मंगलौर स्थित कॉलेज में उनके जीवन के बारे में पढ़ाया जाता है। हजप्पाजी का विश्वास और शिक्षा के प्रति उठाये गये कदम के चलते उन्हें ७१वे गणतंत्र दिवस पर पद्मश्री से सम्मानित किया गया। जब उन्हें सम्मानित किया जा रहा था तब उनका सादगी से भर हुआ कार्य तथा विचार हिमालय से भी ऊँचा प्रतीत हो रहा था। उनके जीवन से प्रेरणा पाने के लिए बहुत कुछ है। बारिश की बूँदे भले छोटी हों, लेकिन उनके निरन्तर बरसने से नदी की धारा बहने लगती है। ठीक उसी प्रकार उन्होंने अपनी छोटी-सी फल की दुकान से मात्र १५० रुपये की प्रतिदिन की दैनिक बचत से गाँव निपाडापू में स्कूल का निर्माण कराया और बच्चों को शिक्षा प्रदान की।

जिस प्रकार हरेकालाजी ने थोड़ी-सी कमाई होने पर भी अपने लिये नहीं, बल्कि दूसरों के लिये सोचा और जीवन में शिक्षा का महत्त्व समझते हुए गाँव में बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए स्कूल का निर्माण कराया। ताकि भविष्य में कोई भी बच्चा उनकी तरह लज्जित न हो। इसलिए हमें शिक्षक का सम्मान करते हुए उनकी बातों का अनुसरण करना चाहिए। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (१३०)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१८-०५-१९६५

सेवक – सच्चिदानन्द क्या है?

महाराज – सत् अस+शतृ – जिसकी सत्ता चिरकाल तक रहती है। आनन्द – बाहर की किसी वस्तु के साथ सम्बन्ध नहीं रखकर अपने में ही स्वयं का बोध करने पर उसमें आनन्द के अतिरिक्त और कोई अनुभव नहीं रहता। ज्ञानी लोग विचार करके समझते हैं कि इस मैं (अपने) के भीतर और किसी वस्तु के रहने का बोध नहीं होने पर अनुभव में उसी आनन्द का बोध होता है। वह सच्चिदानन्द भाषा से परे, मन-वाणी से अगोचर है। जिन्होंने इसका अनुभव किया है, उनसे पूछने पर वे कोई उत्तर नहीं देते, मौन रहते हैं। तब जिज्ञासु ने मन में कल्पना करके उनसे प्रश्न किया – नेति-नेति करके विचार की अन्तिम सीमा पर जाकर क्या सब 'नहीं' हो जाता है? वे बोले –'नहीं।' तो क्या वे सत् हैं। ऋषि मौन ही रहे। जिज्ञासु ने फिर फूछा – देखता हूँ कि वह अवस्था तो बड़ी कष्टदायक है। तब एक अत्यन्त बृहत् 'मैं' बेहोश होकर पड़ा रहता है। आप्त पुरुष बोले – 'नहीं'। जिज्ञासु ने कहा, तो फिर चित् है। तब ज्ञानी चुपचाप रहे। जिज्ञासु ने कहा – यदि हम कभी अकेले कहीं अन्धकार में पड़े रहें, होश में हों, तब तो लगता है कि यह अवस्था हमारे लिये कष्टदायक होगी। तब तो इसे पाने के लिए इतना कष्ट सहने की क्या आवश्यकता है? ज्ञानी पुरुष बोले – 'नहीं'। जिज्ञासु ने समझा – तब तो उस ज्ञान की सत्ता बहुत आनन्द में ही प्रतिष्ठित रहती है, अर्थात् – दुख की कोई सम्भावना ही नहीं रहती है। दीर्घकाल तक जिज्ञासु होकर विचार करते-करते हम इस सत्ता का थोड़ा आभास पाते हैं। मैं स्वरूपतः एक आनन्दमय चैतन्य सत्ता हूँ। इसलिए हमारी कोई सीमा-परिसीमा नहीं है। मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं होने के कारण मेरे जन्म-मरण-क्षय-वृद्धि की कोई आशंका नहीं है। जीव जो कुछ अनुभव करता है, वह सब कुछ उसी चित् सत्ता के भीतर ही है। यह सत्ता सर्वानुस्यूत अर्थात् सर्वव्यापी है, इसीलिए इसे हम ब्रह्म (बृह्+मन् – विशालतम – सर्वव्यापी सत्ता) कहते हैं। यह तत्त्व जटिल और अनेक अनुसन्धानों से परे, अज्ञेय है। इसीलिए मनुष्य चिरकाल से इतना तर्क-वितर्क, इतना वाद-विवाद करता आ रहा है। किन्तु यह वस्तु ऐसी है कि इसके लिए सब कुछ छोड़ने की बात अनिवार्य होने के कारण मनुष्य इसके सम्बन्ध में सोचना ही नहीं चाहता।

सेवक – एकजीववाद क्या है?

महाराज – श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्मानुभूति की बात इस प्रकार लिखी गई है –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

योगी ध्यान करते-करते जब स्वयं को देह से पृथक् अनुभव करते हैं, तब उन्हें बोध होता है कि सभी जीवों में मैं हूँ और जो मैं अपने को केवल उस एक देह में आबद्ध अनुभव कर रहा था, वह बिल्कुल ही भ्रम था। मैं पहले जिस अवस्था को मैं-रूप में बोध करता था, वह अवस्था अब मेरी नहीं है, अब मैं अपने को सभी जीवों के मैं-रूप में ही अनुभव करता हूँ। ऐसी अवस्था होने पर किसी जीव को बद्ध के रूप में अनुभव नहीं किया जाता है। यह विषय स्पष्ट रूप से नहीं समझ सकने पर यह भ्रम हो सकता है कि जब सभी जीव मूलतः एक चैतन्य सत्तावाले हैं, तो किसी एक जीव के ज्ञान प्राप्त कर लेने पर तो सभी का अज्ञान दूर हो जाएगा। किसी व्यक्ति के किसी एक अंग में ठंड का अनुभव होने पर जैसे वह कहता है – मैं ठंड का अनुभव कर रहा हूँ। जैसे ठंड का अनुभव करने के लिए सभी अंगों में ठंड का अनुभव आवश्यक नहीं होता, वैसे ही यह पूर्वोक्ति सिद्धान्त भी है। किन्तु श्रीरामकृष्ण जब पापी-तापी सभी को राम-रूप में देखते थे, तब दृष्ट व्यक्ति अपने 'कच्चे मैं' को ही 'मैं' के रूप में अनुभव करते थे। इस अज्ञान-रूपी इन्द्रजाल के सामने से नहीं हटने पर मुक्ति क्या चीज है,

इसे कोई भी व्यक्ति नहीं समझ सकता है। इसीलिए उस सम्बन्ध में वह अपनी बुद्धि के अनुरूप सिद्धान्त या धारणा बना लेता है। इसी प्रकार से विश्व में मतों की भिन्नता हुई है। '**नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।**'

इस विषय को महर्षि पंतजलि ने बड़े अद्‌भुत ढंग से समझाया है। '**कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्।**'' सगुण ईश्वर ने स्वयं को अनेक रूपों में विभक्त करके प्रत्येक जीव को एक-एक आवरण द्वारा ढक कर रखा है। किसी एक जीव का आवरण हटने पर वह इस माया का रहस्य समझ सकता है, किन्तु दूसरे जीवों के उससे आवृत रहने के कारण उनके लिए यह समझना सम्भव नहीं होता।

२८-०५-१९६५

सेवक – ध्यान-जप नहीं हो पाता है, किन्तु 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' का अभ्यास करना क्या सम्भव है?

महाराज – नहीं, सम्भव नहीं है, एक साथ करना होगा। धार्मिक होने का लक्षण है – विस्तार।

विष्णु (महाराज की सेवा में सहायक एक युवक) की थोड़ी-थोड़ी रूचि हो रही है। यदि वह तीन-चार मास यहाँ रहे, तो मैं सोचता हूँ कि मैं स्वयं ही सीधे उसके घर पर एक पत्र भेजूँगा। इसी प्रकार आजकल कितने ही युवक-युवतियाँ अविवाहित रहते हैं। अच्छा, क्या यह मेरा मोह है? नहीं, ऐसा क्यों होगा? सेवा-भाव है। इन सब बातों में अभी तुरन्त उसकी विशेष सुविधा नहीं होने पर भी भविष्य में सब होगा। इसके अतिरिक्त हमलोगों का यही जोर है – जो आएगा, हम उसी की इस प्रकार सेवा करेंगे। इसके अतिरिक्त, ये सब बातें क्या केवल साधुओं के सुनने की हैं? गृहस्थ के सुनने पर वह सद्‌गृहस्थ होगा, उससे सच्ची सन्तानें होंगी।

सेवक – 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' – सभी जीवों में ईश्वर हैं, यह बोध यदि दृढ़ विश्वास न होकर केवल इसका बौद्धिक अभ्यास करूँ, ध्यान-जप न करूँ, तो क्या इससे उन्नति नहीं होगी?

महाराज – अन्तर्योग और बहिर्योग एक साथ हुए बिना प्रगति सम्भव नहीं। भीतर रस नहीं पाने पर उसकी प्रगति नहीं होती, साधना की प्रगति का लक्षण है – संकीर्णता घटेगी और विस्तार होगा।

सेवक – मैंने देखा है कि मैं जो जानता हूँ, वह सब बौद्धिक है, वह मेरे 'मैं' को स्पर्श नहीं कर पाता।

महाराज – यदि ऐसा हो जाता, तो तुम संत हो जाते। इसीलिए तो तुम अभ्यास करते हो।

प्रमादिनो बहिश्चित्ताः पिशुनाः कलहोत्सुकाः।
संन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते दैवसंदूषिताशयाः।।

साधु सावधान !

अव्रता वटवोऽशौचा भिक्षवच्च कुटुम्बिनः।
तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपाः।।

संसार का त्याग करके संन्यासी की तरह जीवन यापन करने के जितने उपाय शास्त्रों में वर्णित हैं, उनका अभ्यास करना तो दूर की बात है, विशेषतया उन सबको न जानकर ही किसी कारण से बच निकलकर या अन्य किसी प्रयोजन से जो संन्यासी होना चाहते हैं, उनके अपने कर्मफल से चित्त शुद्ध नहीं रहने से और शक्ति के अभाव में कोई कर्म करने पर अनेक प्रकार के भ्रम एवं प्रमाद होते हैं। मन एकाग्र करने की क्षमता नहीं रहने पर राजनीति, समाज सेवा और बाहरी जगत् के विविध विषयों का चिन्तन करके मन अत्यन्त व्यस्त और परेशान रहता है, किसी प्रकार भी एकाग्र नहीं होता। उनके लिए दूसरों की उन्नति सहन करना कठिन होता है तथा तितिक्षा और हृदय की उदारता (हृदयवत्ता) नहीं रहने से सामान्य कारणों से ही उत्तेजित हो जाना, कलह करने में प्रवृत्त होना, ऐसे लोगों में सर्वदा ही देखने को मिलता है। जिन्हें वैदिक वर्णाश्रम-व्यवस्था के बारे में कोई ज्ञान नहीं है, वे ब्रह्मचर्य आश्रम को साधारण पाठशाला की तरह समझते हैं। ब्रह्मचर्य जिस बृहत व्रत के नाम से विख्यात है, उसे वे लोग नहीं जानते। देह, मन को शुद्ध रखना सभी लोगों का प्राथमिक अनिवार्य कर्तव्य है, इसे वे नहीं समझते। इसी प्रकार वे लोग जीवन का प्रथम भाग नष्ट कर देते हैं। कोई-कोई संन्यासी बनकर पूर्वाश्रम के स्वजन-सम्बन्धियों के सम्पर्क में रहना चाहते हैं। उनके चाल-चलन या स्वभाव में पूर्वाश्रम के समस्त परित्यक्त भावों-विचारों की प्रबलता फिर से दिखाई पड़ने लगती है। कोई कोई धार्मिक बनकर सुप्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार की कठोरता का आचरण करते हैं, किन्तु भगवान के चिन्तन में निमग्न या तन्मय होने पर भगवान ही उनके भोजन-निवास आदि की व्यवस्था करते हैं, यह उन्हें ज्ञात नहीं होता। इसलिए जहाँ भोजन-निवास की सुव्यवस्था होती है, उसी प्रकार के स्थानों में वे घूमते रहते हैं। जो लोग संन्यास जीवन का आन्तरिक रहस्य कुछ भी नहीं जानकर संन्यासी बन जाते हैं, उनका तपस्यारहित देह-मन सांसारिक भोगों की ओर बहुत लालायित रहता है। देखते ही देखते ऐसे लोग गृहस्थों से भी अधिक संसारासक्त हो जाते हैं। **(क्रमशः)**

रामराज्य का स्वरूप (९/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

उन्होंने कहा, श्री भरत कैसे हैं? बोले –

निरवधि गुन निरुपम पुरुषु

किसी की उपमा दी जाती है कि वह चन्द्रमा की तरह है और अगर उपमा दे दी जाय कि इनका मुख इनके ही मुख की तरह है, तो बड़ा विचित्र लगेगा। तो सुनैनाजी ने कहा जनकजी से कि कोई उपमा ही दे दीजिए। तो उन्होंने कहा कि उपमा अगर देनी हो, तो एक ही उपमा है। बोले –

निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।

भरत तो भरत की ही तरह हैं, उनके लिए अन्य कोई उपमा नहीं है। महाराज, कोई उपमा तो दे दीजिए। तो उन्होंने कहा –

कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि।।
२/२८८/०

सुनैना, भला सोचो, कोई व्यक्ति पूछे कि सुमेरु पर्वत कितना बड़ा है? और कोई व्यक्ति एक सेर की बाट लेकर कहे कि तौल कर बताता हूँ कि एक सेर से अधिक है कि कम। मानो सुमेरु की तुलना एक सेर के बाट से हो रही है? इससे तो उसकी मूर्खता ही सामने आवेगी। इसी प्रकार से भरत का व्यक्तित्व तो बहुत विशाल है। फिर गिनाने लगे –

बिधि गनपति अहिपति सिव सारद।
कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद।। २/२७८/६

सब का नाम गिनाकर कहते हैं – '**अगम सबहि बरनत**'। भरत की महिमा का वर्णन करने में सभी असमर्थ है। मैं ही नहीं, इनमें से कोई व्यक्ति नहीं है, जो भरत के व्यक्तित्व और चरित्र का ठीक-ठीक वर्णन कर सके। भरत के विषय में वर्णन असमर्थता के माध्यम से किया जा रहा है, निषेध के रूप में वर्णन हो रहा है, विधि के रूप में वर्णन नहीं हो रहा है। सुनैनाजी ने कहा कि महाराज, जब आपने कह दिया कि मैं भी नहीं कह सकता और कोई वक्ता भी नहीं कह सकता, तो भरतजी के व्यक्तित्व को क्या कोई जानता ही नहीं क्या? उन्होंने कहा कि है। कौन है? बोले –

भरत अमित महिमा सुनु रानी ।
जानहिं रामु न सकहिं बखानी ।। २/२८८/२

भरत को जाननेवाले केवल एक राम हैं। रामायण में किसको संदेह नहीं हुआ भरत के सम्बन्ध में, लक्ष्मणजी को संदेह, निषादराज को संदेह, अयोध्या के नागरिकों के मन में संदेह, ऋषि-मुनियों के मन में संदेह। राजर्षि जनकजी ने कहा –

भरत अमित महिमा सुनु रानी ।
जानहिं रामु न सकहिं बखानी ।।

सुनैनाजी ने कहा, तो फिर मैं सीधे श्रीराम से ही बात कर लूँ। तो उन्होंने कहा कि यह भूल मत करिए। क्यों? बोले –

जानहिं रामु न सकहिं बखानी।।

वे भी बस जानते ही हैं, वर्णन तो वे भी नहीं कर सकते। क्योंकि वर्णन जब करेंगे, तो उसे बिना बुद्धिसंगत बनाए उसका वर्णन न करें, तो श्रोता को संतोष नहीं होगा। जो बात आपको समझनी पड़ेगी, उसे तो तर्कसंगत बनाना पड़ेगा। बुद्धिसंगत बनाना पड़ेगा और प्रेम के साथ समस्या यह है कि प्रेम तो न बुद्धिसंगत है, न तर्कसंगत है। तो जो तर्कसंगत और बुद्धिसंगत नहीं है, उसे जब कोई तर्कसंगत और बुद्धिसंगत बना कर कहेगा, तब तो वह अपनी बुद्धि का विकास ही प्रगट करेगा, वह वस्तुत: प्रेम की वास्तविक

व्याख्या थोड़े ही होगी।

दोनों सन्दर्भों में, भगवान के सन्दर्भ में भी और प्रेम के सन्दर्भ में भी, यह बात कही गई है। पूछ दिया किसी ने तुलसीदासजी से कि अलग-अलग रूपों में वर्णन किया, यह कैसा लगता है? और उन वर्णनों में भी परस्पर इतनी भिन्नता, कोई कुछ कह रहा है, कोई कुछ कह रहा है। कोई अद्वैत, कोई द्वैत, कोई विशिष्टादैत, कोई शुद्धाद्वैत, कोई आस्तिक, कोई नास्तिक, यह जो इतने रूपों में कहा जा रहा है, यह तो परस्पर विरोधी बातें हैं। तो गोस्वामीजी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। बोले, ये जितने वर्णन करते हैं, वे ईश्वर का वर्णन थोड़े ही करते हैं। तो? बोले –

एहि भाँति निज निज मति बिलास ।

शब्द कितना बढ़िया चुना उन्होंने? बोले, वह तो बुद्धि का विलास है। जो व्यक्ति बुद्धिमान है, वह अपनी तर्कयुक्त भाषा का प्रतिपादन करता है। ऐसी स्थिति में जो वर्णन ईश्वर के सम्बन्ध में किया जाता है, वह तो वस्तुतः बुद्धि का विलास है। महाराज, फिर तो व्यर्थ है, सब झूठा है। भगवान जब सुनते होंगे, तब तो भगवान को बड़ा क्रोध आता होगा कि मेरे विषय में क्या बक रहे हैं। चाहे जो, चाहे जैसा कहे चला जा रहा है। तो गोस्वामीजी ने कहा कि नहीं, कहिए जरूर। क्यों? बोले – भगवान जब अपने विषय में ऋषि-मुनियों का मत सुनते हैं, जब किसी विद्वान के द्वारा, किसी ऋषि के द्वारा, किसी मुनि के द्वारा अपना प्रतिपादन सुनते हैं, तो प्रसन्न हो जाते हैं। क्यों प्रसन्न हो जाते हैं? गोस्वामीजी ने एक-एक शब्द चुन चुन कर रखा –

एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं।।
७/९१/११-१२

अगर वे विचार के ग्राहक होते, तब तो रुष्ट हुए बिना नहीं रहते। पर वे तो भाव के ग्राहक हैं। विचार में तत्त्व की स्वतंत्रता नहीं है, पर भाव में जो भाव करनेवाला है, वह स्वतन्त्र है। भगवान अगर उसे तर्क की कसौटी पर सुनें, विचार की कसौटी पर सुनें, तो सारी बातें कट जायँ। पर जैसे अगर नन्हा बच्चा अपनी माँ से यह कहे कि मैं तो शेर को मारूँगा, तो माँ इस तर्क-वितर्क के चक्कर में नहीं पड़ती कि यह तो अभी जानता भी नहीं कि शेर क्या होता है, कभी देखा भी नहीं, मूर्ख जैसे बोल रहा है – चूहा को देखकर तो भागता है, कहता है, शेर को मारूँगा। शेर की दहाड़ ही सुनकर इसके प्राण निकल जाएँगे। कुछ तो भी बक रहा है। माँ तो प्रसन्न होकर बच्चे का पीठ ठोकती है – वाह, तुम तो बड़े बहादुर हो। तो भगवान जब ऋषि-मुनियों से अपने बारे में सुनते हैं, तो वे कहते हैं – वाह ! वाह! कितनी बढ़िया बात कही है। जो प्रशंसा होती है, वह प्रभु की भावग्राहकता के कारण होती है, सत्यता के कारण नहीं होती है। ईश्वर के सम्बन्ध में जो कहा जाता है, वह बुद्धि का विलास है, पर प्रेम का सन्दर्भ तो यहाँ और विचित्र हो गया। क्या? बोले, चलो, ईश्वर का वर्णन ऋषि-मुनियों ने किया, पर श्रीराम हैं ईश्वर और भरत हैं प्रेम। प्रेम का वर्णन स्वयं ईश्वर अगर न करने का निर्णय करें, तो? महाराज जनक कहते हैं कि भगवान राम स्वयं यदि भरत के विषय में कोई बात कहें, तो केवल रस लेने के लिए वह बात स्वीकार करनी चाहिए –

भरत अमित महिमा सुनु रानी ।
जानहिं रामु न सकहिं बखानी ।।

सूत्र यही है कि जो बात कही जायेगी, वह बुद्धिसंगत होगी। अब भरत क्या सोचते हैं, क्या करते हैं, उसकी व्याख्या कथा में जो मैं करता हूँ, वह तो मेरे भाव की ही उपज है। उसको क्या सचमुच कोई यंत्र लेकर बता सकता है कि सचमुच श्रीभरत के हृदय में यही भावना है। भरत का वर्णन तो इतना असम्भव है कि भरत के विषय में उस युग में सन्देह ही सन्देह था। यह सन्देह की सीमा कोई साधारण नहीं थी। लक्ष्मण को सन्देह, निषादराज को सन्देह, अयोध्यावासियों को सन्देह। पर सन्देह की पराकाष्ठा कब हो गई? जब हनुमानजी को ही सन्देह हो गया।

श्रीहनुमानजी जब भगवान श्रीराम के मुँह से श्रीभरत की प्रशंसा सुनते हैं। भगवान श्रीराम का एक नियम था कि दिन भर के बाद सायंकाल वे सब को साथ लेकर बैठते थे। जब चर्चा चलती थी, तो घुमाफिरा कर कहीं न कहीं से भरत की बात ले आते थे। भरत का वर्णन किए बिना संतोष नहीं होता था। श्रीहनुमानजी प्रभु के श्रोता हैं। जब श्रीहनुमानजी सुनते हैं, तो उनके मन में यह संदेह होता है। वह संदेह स्वाभाविक है। हनुमानजी सोचते हैं कि प्रभु जो भरतजी की प्रशंसा करते हैं, यह प्रभु का शील है कि सत्य है? बड़ा कठिन है। अपने स्वभाव के कारण प्रशंसा करते हैं कि

भरत सचमुच बड़े प्रशंसनीय हैं? कई लोग स्वभाव से ही प्रशंसा में इतने उदार होते हैं कि उनकी प्रशंसा को प्रमाण पत्र मानना बिल्कुल ठीक नहीं है। भगवान राम कैकेयी की प्रशंसा करने लगे और प्रशंसा करते हुए उन्होंने कह दिया –

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई।
जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई।। २/२६२/८

जो मेरी माँ कैकेयी को दोष देते हैं, वे तो बिल्कुल जड़ हैं। उन्होंने साधु सभा का कभी सेवन नहीं किया। पर भगवान के इस वाक्य पर एक भी श्रोता ने वाह-वाह नहीं कहा, उन्हें साधुवाद नहीं दिया। भगवान राम के भाषण का प्रभाव लोगों पर यह नहीं हुआ कि भगवान राम कैकेयी की इतनी प्रंशसा कर रहे हैं, कैकेयी कितनी महान हैं। हाँ, भरत पर यह प्रभाव पड़ा, भरत ने जब प्रभु का यह वाक्य सुना, तो भरत की आँखों में आँसू आ गये। प्रभु ने सोचा कि चलो, एक श्रोता तो प्रभावित हुआ। भरत तो प्रभावित हुआ और भरत की ओर देखा, तो मानो संकेत में पूछा कि मेरी बात से तुम प्रभावित हुए? तो उन्होंने कहा, प्रभु मैं कथा से प्रभावित नहीं हुआ, मैं तो कथावाचक से प्रभावित हुआ। आप जब किसी की प्रशंसा करते हैं, तो यह नहीं लगता कि जिसकी आप प्रशंसा कर रहे हैं वह प्रशंसनीय है, लगता है कि धन्य हैं आप, जिन कैकेयी ने इतने अनर्थ किए, आपको इतना कष्ट दिया, उनकी भी प्रशंसा करते हैं। आप प्रशंसा करने में अद्वितीय हैं। आप कब किसको कितना बड़ा बना देंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं है। इसलिए प्रभु मैं तो यही कह सकता हूँ कि आपके भाषण में आपका सत्य नहीं, आपका शील बोल रहा है। आप शील की भाषा बोल रहे हैं, इसलिए आपका भाषण सुनकर आपके प्रति भक्ति का उदय हुआ, कैकेयीजी के प्रति भक्ति का उदय नहीं हुआ। सचमुच भगवान हैं प्रशंसा करने में उदार। लक्ष्मणजी ने भी यही कहकर भगवान का मुँह बंद करने की चेष्टा की थी। लक्ष्मणजी जब भरत के विरुद्ध बोलने चले, तो प्रभु ने सोचा कि इसको रोकें कि नहीं? तो उन्हें लगा कि नहीं नहीं, भरत के विरुद्ध तुम क्या कह रहे हो? तो लक्ष्मण जी ने तुरन्त भगवान राम से कहा, देखिए, मैं जानता हूँ, आप कौन हैं। प्रभु ने पूछा क्या जानते हो? बोले –

तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी । २/२२६/८

आप सर्वज्ञ ही नहीं, सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं और अच्छी बात है। अगर में सर्वज्ञ शिरोमणि हूँ, तो तुम्हें मुझसे पूछना चाहिए कि भरत कैसे हैं? बिल्कुल नहीं, मैं बिल्कुल नहीं पूछँगा। मैं जानता हूँ, पर पुछूँगा नहीं। तो क्या करोगे? बोले –

आपनि समुझि कहउँ अनुगामी। २/२२६/८

मैं तो अपनी समझ का प्रयोग करूँगा। भगवान ने कहा, बड़ी अद्भुत बात है। कोई सर्वज्ञ न माने और अपनी समझ का प्रयोग करे, तो समझ में आता है, पर तुम मुझे सर्वज्ञ भी कहते जा रहे हो और उसके साथ-साथ अपनी समझ भी लगा रहे हो। बोले महाराज आपकी सर्वज्ञता तो बस शोभा की है, उसका कोई उपयोग नहीं है।

क्यों? बोले – सर्वज्ञता का अर्थ है कि आप में सर्वज्ञता का गुण है, पर आज तक आपने कभी उसका प्रयोग भी किया है? किसी के पास किसी वस्तु को देख लेने का बहुत बढ़िया यंत्र हो, पर कभी वह उस यंत्र का प्रयोग न करे, तो यही तो कहेंगे कि आपके पास यंत्र तो बड़ा मूल्यवान है, पर आज तक आपने उसका प्रयोग नहीं किया। लक्ष्मणजी ने कहा – देखिए, आप सबके सर्वज्ञ हैं, पर आपका सर्वज्ञ मैं हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं भरत के विषय में पूछूँगा, तो आप क्या कहेंगे। क्या? बोले, आप यही कहेंगे कि भरत अच्छे हैं। अब भगवान तो यही कहनेवाले हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं – मैं समझ गया, आप यही कहेंगे, क्योंकि यह आपके स्वभाव की बाध्यता है।

नाथ सुहृद सुठि सरल चित

महाराज, आपकी सर्वज्ञता एक ओर और आपका स्वभाव दूसरी ओर

नाथ सुहृद सुठि सरल चित्त सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान।।
२/२२७/०

आप इतने भोले हैं, इतने सरल हैं, इतने कोमल हैं, आपका शील और स्नेह इतना अद्वितीय है कि जिसको आप देखते हैं, उसको अपने ही जैसे देखने लग जाते हैं। इसलिए मैं आपसे क्या पूछूँ कि भरत कैसे हैं। भगवान चुप हो गये। मेरे भाषण पर विश्वास ही नहीं है, तो मैं क्या बोलूँ? प्रभु को बोलने का अवसर तो देवताओं ने दिया। देवताओं ने देखा कि लक्ष्मणजी बोले ही नहीं, युद्ध करने के लिए भी तैयार हो गये – **(क्रमशः)**

प्रश्नोपनिषद् (३९)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

फलश्रुति

भाष्य – तद्-एकत्वविदः फलम् आह –

भाष्यार्थ – अब उस (परम ब्रह्म) के साथ एकत्व-बोध होने का फल बताते हैं –

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य। स सर्वज्ञः सर्वो भवति। तदेष श्लोकः।।४/१०।।

अन्वयार्थ – सोम्य (हे सुदर्शन), यः (जो व्यक्ति) ह वै (निश्चित रूप से) तत् (उस) अच्छायम् (छायारहित) अशरीरम् (देहरहित) अलोहितम् (रंगरहित) शुभ्रम् (शुद्ध) अक्षरम् (अपरिवर्तनशील तत्त्व को) वेदयते (जान लेता है), सः (वह) परम् अक्षरम् (परम अक्षर ब्रह्म को) एव (ही) प्रतिपद्यते (प्राप्त करता है) सः (वह) सर्वज्ञः (सर्वज्ञ तथा) सर्वः (सर्व-स्वरूप) भवति (हो जाता है) तत् (उसी का) एषः (यह) श्लोकः (मंत्र है)।।

भावार्थ – हे प्रियदर्शन, जो व्यक्ति निश्चित रूप से उस – छायारहित, देहरहित, रंगरहित, उज्ज्वल (पवित्र) अपरिवर्तनशील तत्त्व को जान लेता है, वह परम अक्षर ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। वह सर्वज्ञ तथा सर्व-स्वरूप हो जाता है। उसी का यह मंत्र है।।

भाष्य – परमेवाक्षरं वक्ष्यमाण-विशेषणं प्रतिपद्यते इति एतत् उच्यते। स यो ह वै तत् सर्व-एषणा-विनिर्मुक्तो अच्छायं तमो-वर्जितम्, अशरीरं नाम-रूप-सर्व-उपाधि-शरीर-वर्जितम्, अलोहितं लोहित-आदि-सर्वगुण-वर्जितम्,

भाष्यार्थ – यहाँ बताया जा रहा है कि वह – उस अक्षर परब्रह्म को प्राप्त करता है। जो समस्त एषणाओं (कामनाओं) से मुक्त हो चुका है, वह उसे जान लेता है – छायारहित, तमोरहित, नाम-रूप आदि सभी उपाधियोंवाले शरीर से रहित, लालिमा आदि समस्त गुणों से रहित है; और

यतः एवम् अतः शुभ्रं शुद्धम्, सर्व-विशेषण-रहितत्वात् अक्षरम्, सत्यं पुरुष-आख्यम्, अप्राणम् अ-मनो-गोचरम्, शिवं शान्तं स-बाह्य-अभ्यन्तरम् अजं वेदयते विजानाति।

ऐसा होने के कारण, जो सभी विशेषणों से रहित होने से शुद्ध है, जो अक्षय है, जो सत्य है, जो (सर्वव्यापी होने से) पुरुष कहलाता है, जो प्राणरहित है, जो मन के अगोचर है, जो शुभ, शान्त और सबके बाहर तथा भीतर स्थित है और अजन्मा है।

यस्तु सर्वत्यागी सोम्य स सर्वज्ञो न तेन अविदितं किंचित् सम्भवति। पूर्वम् अविद्यया-असर्वज्ञ आसीत् पुनः विद्यया-अविद्या-अपनये सर्वो भवति तदा। तत्-तस्मिन्-अर्थ एष श्लोको मन्त्रो भवति उक्तार्थ संग्राहकः।।१०।।(५१)

हे प्रियदर्शन, जो सर्वत्यागी है, वह सर्वज्ञ हो जाता है, उससे कुछ भी अज्ञात रह पाना असम्भव है। पहले (पूर्वजन्मों में) वह अज्ञान के कारण सर्वज्ञ नहीं (अल्पज्ञ) था, फिर ज्ञान के द्वारा अज्ञान का निवारण हो जाने से, वह सर्व-स्वरूप हो जाता है। इसी भाव का प्रतिपादन करनेवाला यह मंत्र है।।

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र। तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति।।११।। (५२)

अन्वयार्थ – सोम्य (हे प्रियदर्शन), यत्र (जिसमें) सर्वैः (समस्त) देवैः (देवताओं) सह (के साथ) प्राणाः (सभी

शेष अगले पृष्ठ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (२६)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

षष्ठोऽध्यायः

गुरुः

श्रीरामकृष्ण उवाच

गुरुर्वा एक एव स्याद् बहवो भवितुं तथा।

किन्तूपगुरवोऽर्हन्ति मान्यो यस्मादिहेव च ।।१।।

शिक्षा चेल्लभ्यते काचिदुपगुरुः स एव हि ।

भागवतेऽवधूतेन चतुर्विंशतिरादृताः।।२।।

– श्रीरामकृष्ण ने कहा – गुरु एक होते हैं, किन्तु उपगुरु अनेक हो सकते हैं। इस जगत में जिससे जो कुछ शिक्षा प्राप्त किया जाय, उसे ही उपगुरु कहते हैं। भागवत में है, अवधूत ने इस प्रकार चौबीस उपगुरु बनाये थे।

केदारे ब्रजतो दृष्टोऽवधूतेन नेकदा पुरा ।

साडम्बरं सघोषञ्च पुरतः वर आगतः ।।३।।

– एक दिन मार्ग से जाते समय अवधूत ने देखा कि सामने से ढोल-ढाक बजाते, गाते-बजाते हुए एक वर आ रहा है।

परतो व्याध एकस्तु तत्रेकमनास्तदा।

स्वलक्ष्यं लक्ष्यमानोछयं आगच्छन्तं वरं प्रति।

पुरतोऽनवलोकयन् साऽम्बरं सकृच्चतम् ।।४।।

– दूसरी ओर एक व्याध पुरी एकाग्रता से अपने लक्ष्य की ओर देख रहा है । इतनी जोर से आवाज करते हुए वर आ रहा है, उधर एक बार भी उसने नहीं देखा।

नमस्कृत्यावधूतञ्च तदा व्याधमुवाच तम् ।

गुरुत्वं वे नमस्तुभ्यं निषाद स्वीकरोमि मे ।।५।।

– तब अवधूत ने उस व्याध को प्रणाम कर कहा – मैं तुम्हें अपना गुरु स्वीकार करता हूँ।

(क्रमशः)

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

प्राण) भूतानि (पंचभूत) विज्ञानात्मा (जीवात्मा) सम्-प्रतिष्ठन्ति (भलीभाँति स्थित रहता है); यः तु (जो कोई भी) तत् (उस) अक्षरं (अक्षर ब्रह्म को) वेदयते (जान लेता है), सः (वह) सर्वज्ञः (सर्वज्ञ और) सर्वम् (सर्व में) एव (ही) आविवेश (प्रविष्ट हो जाता है) इति।।

भावार्थ – हे प्रियदर्शन, जिस अक्षर ब्रह्म में समस्त देवताओं, सभी प्राण और पंच महाभूतों के साथ विज्ञान-रूप आत्मा भलीभाँति स्थित रहता है; उसे जो कोई भी जान लेता है, वह सर्वज्ञ और सर्व में ही प्रविष्ट हो जाता है।।

भाष्य – विज्ञानात्मा सह देवैः च अग्नि-आदिभिः प्राणाः चक्षुः आदयो भूतानि पृथिवी-आदीनि सम्-प्रतिष्ठन्ति प्रविशन्ति यत्र यस्मिन् अक्षरे तद्-अक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य प्रियदर्शन स सर्वज्ञः सर्वमेव आविवेश आविशति इत्यर्थः।।११।।

हे प्रियदर्शन, ज्ञाता-रूप जीवात्मा, अग्नि आदि देवताओं, नेत्र आदि इन्द्रियों तथा पृथ्वी आदि पंचभूतों के साथ, जिस अक्षर (ब्रह्म) में प्रविष्ट हो जाती है, उसे जो कोई भी जानता है, वह (उसी) सर्वज्ञ, सर्व-स्वरूप में प्रवेश करता है।।११।। (५२)

।। इति चतुर्थ प्रश्न समाप्त।।

(क्रमशः)

शक्तिशाली जीवन के निर्माण में व्यक्तित्व विकास का महत्त्व

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

अमेरिका जाने से पहले, खेतड़ी, राजस्थान के राजा अजीत सिंह ने स्वामी विवेकानन्द से पूछा, 'जीवन' क्या है? स्वामीजी ने संक्षिप्त में उत्तर दिया, 'Life is the unfoldment and development of a being under circumstances tending to press it down.' यह 'जीवन' की गहन परिभाषा है। इसके माध्यम से स्वामीजी ने व्यक्तित्व विकास के रहस्य को खोलने की कुंजी प्रदान की है, जो जीवन की चुनौतियों का सामना करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व इस तथ्य में निहित है कि हम कैसे कार्य और प्रतिक्रिया करते हैं।

आइए ! इसे एक छोटी-सी कहानी से समझते हैं :

पूर्व छात्रों का एक समूह, अपने विश्वविद्यालय के प्रोफेसर से मिलने के लिए एकत्रित हुआ। वह समूह प्रोफेसर के घर पहुँचा और प्रोफेसर के साथ उनका वार्तालाप शीघ्र ही जीवन के कार्य और तनाव की शिकायतों में बदल गया। प्रोफेसर कॉफी लाने के लिए रसोई में चले गए और कॉफी का एक बड़ा बर्तन और चीनी-मिट्टी के बर्तन, प्लास्टिक, काँच और क्रिस्टल जैसे विभिन्न प्रकार के कप लेकर लौटे। उनमें से कुछ सादे दिखनेवाले और कुछ मूल्यवान और कुछ अधिक मूल्यवान थे। उन्होंने अतिथियों से कहा कि वे स्वयं कॉफी लेने में सहायता करें।

कॉफी का कप लेने के बाद प्रोफेसर ने कहा, अगर आपने ध्यान दिया हो, तो सभी ने कीमती कप लिए हैं, जबकि सादे और सस्ते कपों को छोड़ दिया है। यह सामान्य बात है कि आप अपने लिए सर्वश्रेष्ठ चाहते हैं, जो आपकी समस्याओं और तनाव का स्रोत है। यह निश्चित जानें कि कप कॉफी में कोई गुणवत्ता नहीं लाता है। आप सभी वास्तव में कॉफी चाहते थे, कप नहीं।

अब इस पर विचार करें : मान लो जीवन कॉफी है। समाज में नौकरी, पद, सुरक्षा और पैसा कप हैं। वे जीवन को धारण करने के उपकरण मात्र हैं। जिस प्रकार का कप हम धारण करते हैं, वह न तो बदलता है और न ही हमारे जीवन की गुणवत्ता को परिभाषित करता है। कभी-कभी केवल कप पर ध्यान केन्द्रित करने से हम कॉफी का आनन्द लेने में असफल हो जाते हैं। सबसे सुखी लोगों के पास सब कुछ सबसे अच्छा नहीं होता है। वे बस सब में से सब कुछ सर्वश्रेष्ठ बनाते हैं। प्रोफेसर ने अपनी बात से अपने पुराने छात्रों को सकारात्मक दृष्टिकोण बनाने के लिए प्रेरित किया!

उद्देश्यपूर्ण जीवन जीने के लिए व्यक्ति को अपनी समस्याओं का समाधान करने और उन कार्यों को पूरा करने का उत्तरदायित्व निभाना सीखना चाहिए, जो वह लगातार हमारे लिए निर्धारित करता है और यही मानव अस्तित्व का सार है।

मनुष्य स्वभाव के चार मूल आयाम हैं

१. **भावुकता :** नकारात्मक भावनाओं जैसे क्रोध और भय को बार-बार और आवेकपूर्वक व्यक्त करने की प्रवृत्ति।

२. **गतिशीलता** : शारीरिक गतिविधि का स्तर जो व्यक्ति विशेष रूप से अभिव्यक्त करता है।

३. **आवेगशीलता** : जिस स्तर तक एक व्यक्ति बिना विचार-विमर्श के शीघ्रता से कार्य करता है, एक गतिविधि से दूसरी गतिविधि पर जाता है और आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करने में कठिनाई अनुभव करता है।

४. **मिलनसारिता** : बहिर्मुखी और मैत्रीपूर्ण होने और दूसरों की संगति में रहने की प्रवृत्ति।

सामाजिक वातावरण इन प्रवृत्तियों पर प्रतिक्रिया करता है, बदले में उन्हें प्रभावित करता है और आकार देता है।

सैकड़ों युवा आज अपनी गलत धारणा के कारण स्वयं को बन्धनगृह में डाल लेते हैं। परिणामस्वरूप उनका जीवन व्यामोह और उथले विचारों से युक्त होता है। ऊपर बताए गए चार स्वभाव चुनौतियों की ओर युवाओं का ध्यान आकृष्ट करते हैं और युवाओं के मन में क्रान्ति ला देते हैं। जब तक कोई इस व्यामोह को तोड़ना नहीं जानता और शक्ति, रचनात्मकता और परिपूर्णता से युक्त जीवन का निर्माण नहीं

करता, तब तक उसे जीवन में शान्ति और आनन्द नहीं मिल सकता। यह आत्मरूपान्तरण नियमित और व्यवस्थित प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इन प्रशिक्षण सत्रों के माध्यम से व्यक्तित्व विकास पर उपनिषदों, भगवद्गीता और स्वामी विवेकानन्द की प्रेरक और व्यावहारिक शिक्षाएँ युवाओं को आत्मविश्वास, आत्म-ज्ञान और आत्म-सम्मान प्राप्त करने में सहायता कर सकती हैं।

व्यक्तित्व विकास के चरण

हमें जीवन में बहुत सी चीजें और आदतें सीखनी हैं, पुन: सीखनी हैं और कुछ नहीं सीखनी हैं; तभी हम वास्तव में आत्मरूपान्तरण ला सकते हैं। इसका अभ्यास करने में सहायक कुछ विचार यहाँ दिए गए हैं :

१. सकारात्मक दृष्टिकोण : क्या आपको प्राय: अपनी क्षमताओं के बारे में आत्म-सन्देह होता है? व्यक्तित्व विकास के बारे में सकारात्मक सोच एक प्रमुख पहलू है, इससे परिस्थिति को बदलने और वास्तव में सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है। सफल व्यक्ति सकारात्मक होते हैं और सकारात्मक व्यक्ति सफल होते हैं। वे अपने मन में नियमित रूप से सकारात्मक विचार लाते हैं। वे अपने व्यक्तित्व के अन्य ९०% अर्थात् नैतिकता, उद्देश्यों, विश्वासों, मूल्यों, निर्णयों और चरित्र को सुधारने पर भी कार्य करते हैं जो दूसरों को दिखाई नहीं देता है।

वास्तव में व्यक्तित्व विकास प्रशिक्षण का सार व्यक्ति को न केवल अपने प्रति, बल्कि विश्व के प्रति भी अपना दृष्टिकोण बदलने में सहायता करता है। उसे स्वयं की पुरानी छवियों को बदलना चाहिए और उसके स्थान पर एक नई अधिक सम्पूर्ण और समग्र छवि का विकास करना चाहिए। यह छवि बदलनेवाला व्यक्ति स्वयं को औसतन लोगों से अलग करता है और स्वयं को अधिकशक्तिशाली, आत्मविश्वासी और कुशल बनाता है।

२. भावनात्मक स्थिरता प्राप्त करना : यह जीवन में सबसे आवश्यक है। 'ध्यान और आध्यात्मिक जीवन' नामक पुस्तक में स्वामी यतीश्वरानन्द जी लिखते हैं (पृष्ठ १३४) : यह नहीं भूलना चाहिए कि बहिर्जगत् में जो संघर्ष दिखाई देते हैं, वे केवल उसी की अभिव्यक्ति हैं, जो हमारे अपने मन में पाया जाता है। यह एक तथ्य है कि जैसे हमारा शरीर विष और रोग के कीटाणुओं से प्रभावित होता है, वैसे ही हमारा मन भी नकारात्मक भावनाओं के कारण प्रभावित होता है। हम स्वयं ही अपनी सबसे बड़ी समस्या हैं।

कितना सही ! हमारे जीवन में जो कुछ भी होता है, उसके लिए हम दूसरे लोगों, परिस्थितियों या चीजों को दोष देते हैं। जीवन की सबसे बड़ी सीख यह है कि 'मुखौटा बदलने' से कुछ नहीं बदल सकता, लेकिन समस्या का सामना करने से सब कुछ बदल सकता है।

३. शक्ति ही जीवन है : व्यक्तित्व विकास किसी व्यक्ति को यह सन्देश देता है कि 'असफल होने पर निर्भीक बनो और जब सफल हो तो शान्त रहो।' हम जानते हैं कि सोने को गलाने पर आभूषण बनाया जाता है, ताँबे को पीटकर तार बन जाता है और फटे हुए पत्थर मूर्तियाँ बन जाते हैं। इसलिए, हमें जीवन में जितना अधिक संघर्ष, कष्ट होता है, हम उतने ही अधिक मूल्यवान हो जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि हर कोई 'क्षात्र वीर्य (वीर का साहस) और ब्रह्म तेज (शुद्ध मन की प्रतिभा) का मिश्रण हो। जिस तरह पहाड़ों की घाटियाँ और चोटियाँ होती हैं, उसी तरह जीवन में भी उतार-चढ़ाव, सफलताओं और असफलताओं की अपनी भूमिका होती है। वे बुद्धिमानों, अज्ञानियों, युवा और वृद्धों को चुनौती देते हैं। यह कहना मूर्खता है कि मैं केवल चोटियों का आनन्द लूँगा, घाटियों का नहीं। बुद्धिमान और बलवान दोनों की मनोरमणीय सुन्दरता को देखते हैं।

जब व्यक्ति सफलता और असफलता; दोनों का आनन्द लेता है, तो उसका व्यक्तित्व सशक्त होता है। उसके विचार और कार्य दूसरों को भी प्रेरित करते हैं।

निष्कर्ष : व्यक्तित्व के विकास के लिए हमें महापुरुषों के जीवन और उपदेशों का मनन करते रहना चाहिए और उनकी उक्तियों का अनुकरण करने का प्रयास करना चाहिए। उनके उदाहरण हमें जीवन में प्रतिकूलताओं का सामना करना सिखाते हैं। अपने महान् जीवन और ऊर्जस्वी व्यक्तित्व के माध्यम से उन्होंने मानव जाति को सिखाया है कि स्वांगपूर्ण जीवन में समायोजित न हों, बल्कि स्वयं में रूपान्तरण लाने के लिए प्रयास करें। व्यक्तित्व विकास हमें आत्म-मूल्य को अभिपुष्ट करना सिखाता है, न कि इसे अवक्रमित करना। जो अपने आत्म-मूल्य का समर्थन करते हैं, केवल वे ही सशक्त और आत्मविश्वास की अनुभूति कर सकते हैं।

यथार्थ में, हम यहाँ स्वामीजी की जीवन की परिभाषा का पुन: स्मरण करते हैं : unfoldment and development of a being under circumstances और यह unfoldment प्रकटीकरण, व्यक्तित्व विकास का सारभूत तत्त्व है। ○○○

रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि

स्वामी पररूपानन्द, जयरामवाटी

(गतांक से आगे)

मठ में विविध कठिनाइयों के मध्य हास्य-व्यंग्यपूर्ण व्यवहार भी चलता था। जनसाधारण में यह भवन भुतहा जाना जाता था। अत: कभी कभी आसपास का कोई व्यक्ति अपने मन का भय व्यक्त करता था और उसे मठ के किसी सदस्य से कुछ ऐसा आचरण मिलता, जिससे वह अत्यन्त भयभीत होकर वहाँ से पलायन करता था। बाद में इस तरह की घटना की परस्पर चर्चा कर सभी हँस देते। हास्य-व्यंग्य की कहानियाँ कहकर मनोरंजन करने में स्वामी सारदानन्द, रामकृष्णानन्द और तुरीयानन्द दक्ष थे। ठाकुर की संन्यासी-संतान एवं परवर्ती समय में आये नवीन संन्यासियों में सेवा-भाव सहज ही देखा जाता था। स्वामी अभेदानन्द दीर्घ परिव्रज्या कर गिनि कृमि रोग से आक्रान्त होकर अत्यन्त कष्ट पा रहे थे। स्वामी सारदानन्द द्वारा की गई मातृवत् सेवा से चार महीने के पश्चात् क्रमश: वे स्वस्थ होकर चलने-फिरने लगे। अपनी आत्मकथा में अभेदानन्दजी ने लिखा था – 'गर्भधारिणी माता के समान निर्विकार चित्त से शरत् ने मेरी सेवा की थी।' स्वामी निरंजनानन्द और अद्भुतानन्द, सारदानन्दजी की सहायता करते थे। सारदानन्दजी काशी में तपस्या करते समय रक्त-दस्त से आक्रान्त हो गये। उनके कलकत्ता आने पर ब्रह्मचारी कालीकृष्ण एवं एक-दो अन्य सहायकों ने उनकी प्रेम से सेवा की थी। स्वामीजी के घर के एक सदस्य के चेचक हो जाने पर स्वामी सदानन्द को भेजा गया था। परन्तु वे रोगी को सम्भाल नहीं पाये। अत: स्वामी सारदानन्द ने यह दायित्व स्वयं अपने ऊपर लिया था। स्वामीजी की नानी की शारीरिक अवस्था गम्भीर हो जाने पर स्वामी सारदानन्द, योगानन्द एक चिकित्सक लेकर उनके घर पहुँचे। इन लोगों की सेवा पाकर वे स्वस्थ हो गईं। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जिससे ठाकुर की अभूतपूर्व शिक्षा के फलस्वरूप संन्यासियों में सेवाभावना होना स्वाभाविक हो गया था। श्रीरामकृष्ण भावान्दोलन का यह विलक्षण आयाम है, जो परम्परागत संन्यासी-सम्प्रदायों में नहीं दृष्टिगोचर होता है। धर्म महासभा में सफलता के पश्चात् स्वामीजी अमेरिका से मार्च, १८९४ ई. के अनन्तर आलमबाजार मठ भेजे गये पत्रों में गुरुभाइयों का उत्साहवर्धन करते रहते थे, आवश्यक उपदेश देते, धर्मप्रचार के कार्य करने की नई प्रणाली को अधिक महत्त्व देने के लिए कहते। जैसे – सनातनधर्म के शास्त्रीय विचारों का प्रचार-प्रसार इत्यादि। वे स्वामी त्रिगुणातीतानन्द को लिखते हैं – भेजो, एक को चीन, एक को जापान। इन पत्रों को उनके गुरुभाइयों द्वारा बारम्बार पढ़ा जाता एवं सभी अपनी चिन्तन शैली को तदनुसार परिमार्जित करने में जुट जाते। संघबद्ध होकर कार्य करना तत्कालीन

समाज में अप्रचलित था, अत: मठ के युवा संन्यासियों के लिये यह एक अभिनव प्रयास था। अमेरिका में सफलता का दौर आरम्भ होने के बाद स्वामीजी के विरुद्ध अमेरिका एवं भारत में ईर्ष्यालु लोग उनके बारे में अनेक प्रकार की मिथ्या बातें कहकर उनकी निंदा कर रहे थे। ९ अप्रैल, १८९४ ई. को आलासिंगा पेरुमल को पत्र लिखकर स्वामीजी ने मद्रास में एक बृहत् जनसभा का आयोजन कर एक प्रस्ताव पारित करने को कहा, जिसमें कहा जाये कि स्वामीजी द्वारा की गई सनातनधर्म की व्याख्या यथार्थ है। एवं इस प्रस्ताव को अमेरिका की कुछ मुख्य पत्रिकाओं और धर्म महासभा के सभापति श्री बैरोज को भेजा जाये। इस पत्र के प्राप्त होने के पहले ही २८ अप्रैल, १८९४ ई. को मद्रास के पचैयप्पा हाल में एक बड़ी जनसभा का आयोजन किया गया था, जो स्वामीजी के कुछ युवा अनुयायियों के उद्यम से सम्भव हुआ था। मद्रास के विशिष्ट नागरिकों ने स्वामीजी को अभिनंदित किया था और जिसके द्वारा लिये गये प्रस्ताव को अमेरिका की पत्रिकाओं में अगस्त में प्रकाशित किया गया था। इस प्रकार की सभा बैंगलोर और कुम्भकोणम् में भी आयोजित हुई थी। इधर आलमबाजार मठ में पत्र एवं पत्रिका से दक्षिण भारत में आयोजित सभाओं की सूचना ज्ञात हुई तथा स्वामीजी ने भी इस विषय में लिखा था। अत: मठवासी पूरी तत्परता से सभा के आयोजन करने में जुट गये। ५ सितम्बर, १८९४ ई. को कलकत्ता टाउन हाल में राजा प्यारी मोहन मुखोपाध्याय के सभापतित्व में विशाल सभा आयोजित हुई, जिसमें लगभग चार सहस्र नागरिक उपस्थित थे। यद्यपि शिकागो धर्ममहासभा के एक वर्ष पश्चात् यह सभा आयोजित हुई थी, परन्तु यह प्रभावशाली सिद्ध हुई थी। स्वामी योगानन्द, स्वामी अभेदानन्द, स्वामी रामकृष्णानन्द, स्वामी सारदानन्द, मनोमोहन मित्र, हरमोहन मित्र ने सभा के सफल आयोजन करने के लिये अथक परिश्रम किया था। घर-घर जाकर अर्थ संग्रह एवं विभिन्न व्यक्ति और संस्थाओं से सम्पर्क किया गया था। स्वामीजी ने गुरुभाइयों को पत्र लिखकर अपने मन के आनन्द को अभिव्यक्त करते हुए इस घटना से स्पष्ट हुई गुरुभाइयों में निहित अपार कार्य-क्षमता के बारे में बताया था, साथ ही यह भी बताया था कि इस प्रकार की सभा भारतवासियों के आत्मविश्वास व स्वाभिमान को जगाने के लिये आवश्यक थी। इस विशेष रूप से आयोजित की गई सभा का प्रभाव देश के स्वामी विवेकानन्द के प्रति श्रद्धा रखनेवालों और शिक्षित समाज में गहराई से पड़ा। स्वामीजी एवं मठ के संन्यासियों के प्रति श्रद्धा की वृद्धि हुई तथा इस नवीन भावान्दोलन को जानने की जिज्ञासा पहले की अपेक्षा घनीभूत हुई। दोनों पक्षों के सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हुए। स्वामी विवेकानन्द भी संगठन की अपरिमित शक्ति के प्रति आशावान हुए। [२६]

आलमबाजार मठ में शास्त्रचर्चा में मठवासियों का मनोनिवेश भी हमारे लिये उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। यहाँ स्वामी रामकृष्णानन्द ने उच्च गणित की चर्चा और अंग्रेजी साहित्य पढ़ने के अतिरिक्त संस्कृत में अनुष्टुप् छन्द में श्रीरामकृष्ण की उपदेशावली की रचना की थी। स्वामी सारदानन्द ईसाई ग्रन्थ एवं तन्त्र साहित्य के अध्ययन में रत हुए थे। उनका तन्त्रशास्त्र के विषय में प्रथम लेख ब्रह्मवादिन् पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। स्वामी अभेदानन्द की शास्त्राध्ययन में विशेष रुचि थी ही, तदनुसार वे सर्वदा जप-ध्यान और शास्त्रपाठ में लगे रहते थे। हृषीकेश में उन्होंने मण्डलेश्वर धनराजगिरि के पास कुछ समय शारीरिक-भाष्य का अध्ययन किया था। अत: अभेदानन्दजी के निकट बहुत दिनों तक स्वामी शिवानन्द व स्वामी अखण्डानन्द प्रतिदिन दोपहर में दो घण्टे शारीरिक-भाष्य का अध्ययन करते थे। स्वामीजी पत्रों में आवश्यक निर्देश देते रहते थे। उनके अनुसार हमें वेदमूर्ति श्रीरामकृष्ण देव के जीवन को सम्मुख रखकर वेद पुराणादि पढ़ना है। उन्होंने स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखा था कि ऋग्वेद से आरम्भ करके पुराण तन्त्र आदि में सृष्टि, प्रलय, जाति, स्वर्ग, नरक, आत्मा, बुद्धि, इन्द्रिय, मुक्ति, संसार, पुनर्जन्म आदि के बारे में कहाँ क्या लिखा है, एकत्र करे, जिससे यथार्थ विद्वत्तापूर्ण लेख जनसाधारण की शिक्षा के लिये प्रस्तुत किया जा सके। मठ में ठाकुर की नित्यसेवा-पूजा, ध्यान, शास्त्र पठन-पाठन, श्रीरामकृष्ण जन्मोत्सव आदि सुचारु रूप से चल रहे थे, परन्तु त्यागी युवा साधकों की चारित्रिक-शक्ति, उनलोगों की अपने आदर्श के प्रति प्रेम-भक्ति तथा परस्पर एक दूसरे के प्रति एवं अन्यान्य भक्तों के प्रति नि:स्वार्थ प्रेम ही मठ का ऐश्वर्य था। क्रमश: यह भावराशि नवीन संन्यासियों में भी संचरित होती गई। इन सभी आध्यात्मिक पक्षों को आधार स्वरूप दृढ़तापूर्वक स्थापित करके रामकृष्ण संघ के मुख्य केन्द्र के लिये भूमि क्रय करने के लिये स्वामीजी गुरुभाइयों को लिखते रहे। प्राय: पत्रों में वे किसी भी कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से

करने पर विशेष बल देते थे। स्वामी त्रिगुणातीतानन्द को १४ अप्रैल, १८९६ ई. को पत्र में लिखा – 'मेरे पत्र को अच्छी तरह पढ़े बिना तुम मनमानी क्यों करते हो? पत्र खो जाने का कारण क्या है? पत्र का उत्तर लिखते समय पत्र को (जिसका उत्तर लिखना हो) सामने रखकर लिखना चाहिये। तुम लोगों में कुछ व्यावहारिक बुद्धि की आवश्यकता है।... पत्र खो कैसे जाते हैं? उन्हें फाइल क्यों नहीं किया जाता है?... मेरा पत्र क्या सबके समक्ष पढ़ा जाता है?... तुम लोगों में कुछ व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता है, अब तुम्हें संगठित होना चाहिये। तदर्थ पूर्णतया आज्ञा-पालन तथा श्रम-विभाजन आवश्यक है।' इसी पत्र के अन्त में स्वामीजी लिखते हैं – 'यदि लोग भगवद्बुद्धि से उनकी (ठाकुर की) पूजा करें, तो कोई हानि नहीं है। उनको न तो प्रोत्साहित करना और न निरुत्साहित। साधारण लोग तो सर्वदा 'व्यक्ति' ही चाहेंगे, उच्च श्रेणी के लोग 'सिद्धान्तों' को ग्रहण करेंगे। हमें दोनों ही चाहिये, किन्तु सिद्धान्त ही सार्वभौम है, व्यक्ति नहीं। इसलिए उनके (ठाकुर के) द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों को ही दृढ़ता के साथ पकड़े रहो, लोगों को उनके व्यक्तित्व के बारे में अपनी-अपनी धारणा के अनुसार सोचने दो।... सब तरह के विवाद, विद्वेष की निवृत्ति हो, इनके रहने से सब कुछ नष्ट हो जायेगा।' इस प्रकार आलमबाजार मठ के इस पर्व में स्वामीजी अमेरिका व यूरोप से गुरुभाइयों को लगातार निर्देशादि देकर भावी रामकृष्ण-संघ की कार्यशैली को परिमार्जित करते जा रहे थे। उनका कहना था। "I am determined to make you decent workers thoroughly organized" अर्थात् मैं तुमलोगों को शिष्ट एवं पूर्णतया संयोजित बनाने के प्रति कटिबद्ध हूँ। और गुरुभाइयों में भी स्वामीजी के प्रबल आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव का विस्तार होने के कारण उनके प्रति श्रद्धा क्रमश: वर्धित होती जा रही थी। [२७]

स्वामी विवेकानन्द प्रथम बार विदेश से प्रत्यावर्तन कर श्रीलंका में कोलम्बो, जाफना आदि स्थानों पर अपने अनुयायियों व प्रशंसकों से मिलकर तत्पश्चात् रामेश्वरम्, मदुरई, कुम्भकोणम्, मद्रास आदि स्थानों पर अत्यन्त व्यस्तता और अथक परिश्रम के कारण पूर्णतया थके हुए 'मोम्बासा' जहाज से १९ फरवरी, १८९७ ई. को कलकत्ता के दक्षिण में 'बजबज' में उतरकर ट्रेन से सियालदह रेलवे स्टेशन पहुँचे। लगभग २०सहस्र लोगों की उनके प्रति प्रेम के उत्ताल तरंग से उमड़ती हुई भीड़ अपने अतिप्रिय 'नरेन्द्रनाथ' को सम्मुख पाकर मानो उन्मत्त हो गई थी। युवागण स्वामीजी को ले जाने के लिये घोड़गाड़ी से घोड़ों को अलग कर स्वयं ही उसे खींचकर सुरेन्द्रनाथ कालेज ले आये जहाँ स्वामीजी ने संक्षिप्त भाषण दिया। तत्पश्चात् गोपाललाल शील के विशाल भवन में जाकर साथ में आये विदेशी भक्तों को ठहराकर स्वयं आलमबाजार मठ गये। यहाँ स्वामी रामकृष्णानन्द और अखण्डानन्द द्वारा सुसज्जित मठ में प्राणप्रिय नरेन्द्र को देखकर सभी आनन्द से अभिभूत हो गये। २८ फरवरी, शोभाबाजार के राजभवन में कलकत्ता के नागरिकों द्वारा आयोजित स्वागत-सभा में उन्होंने हृदयस्पर्शी भाषण दिया। इन दिनों स्वामीजी दिन में गोपाललाल शील के भवन में रहते और आगन्तुकों से वार्तालाप करते थे, परन्तु रात्रि आलमबाजार मठ में व्यतीत करते थे। मठवासी स्वामीजी के मुख में अपूर्व तेजस्वीभाव को परिलक्षित करते थे। कभी-कभी स्वामीजी कौपीन पहने हुए मठ की छत पर सिंह-सदृश टहलते थे। कभी वे मठवासियों के साथ शास्त्रचर्चा करते, प्रश्नों के उत्तर देकर प्रश्नकर्ता को मुग्ध करते, कभी ध्यान करने की पद्धति सिखाते और कभी हल्के वार्तालाप से आनन्दित करते। प्राय: मधुर स्वर से गीतगोविन्द के गान गुनगुनाते रहते थे। यहाँ स्वामीजी के साथ विदेश से आये हुए कैप्टन सेवियर, श्रीमती सेवियर और टि हैरिसन गोपाललाल शील के घर पर रुके हुए थे। स्वामीजी के अमेरिकी शिष्य जे.जे. गुडविन एवं दक्षिण भारत के भारतीय शिष्य आलासिंगा पेरुमल, नरसिंहा चारियर, सिंगारवेलु मुदलियर (कीडी) रात्रि मठ में ही व्यतीत करते थे। गुडविन मठवासियों के साथ अन्तरंग की भाँति सरल भाव से हास्य-व्यंग्य करते थे। मठ में पदार्पण करने के लगभग एक महीने के भीतर स्वामीजी ने चार युवा अनुयायियों को संन्यास-दीक्षा प्रदान की। इनके संन्यास-नाम हैं – स्वामी विरजानन्द, निर्भयानन्द, प्रकाशानन्द एवं नित्यानन्द। संन्यास देने के पूर्व रात्रि में स्वामीजी ने संन्यास की महिमा गान करते हुए कहा – संन्यासी का जन्म ही होता है – बहुजनहिताय बहुजनसुखाय। संन्यास प्रदान करने के पश्चात् स्वामीजी आनन्द से उल्लसित थे। इनके अतिरिक्त स्वामीजी की प्रेरणाप्रद वाणी से प्रेरित होकर जिन वैराग्यवान युवकों ने स्वयं को स्वामीजी के सम्मुख समर्पित किया उनके संन्यास नाम हैं – स्वामी विमलानन्द, शुद्धानन्द, बोधानन्द, आत्मानन्द और स्वरूपानन्द। पत्रों के

माध्यम से संगठित होकर कार्य करने के प्रसंग को अब यहाँ मठ में पुन: स्वामीजी गुरुभाइयों को समझाते। क्रमश: सभी उनके अभिप्राय के अनुसार जीवनशैली अपनाने को सहमत हो गये थे। कलकत्ता की आर्द्र जलवायु से राहत देने हेतु तथा परिश्रम व मुधमेह (डायबिटीज) से पीड़ित स्वामीजी के दुर्बल शरीर को विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। चिकित्सक एवं गुरुभाइयों के परामर्शानुसार ८ मार्च, १८९७ ई. को वे दार्जिलिंग गये। २१ मार्च को स्वामीजी खेतड़ी के राजा अजीत सिंह से मिलने के लिये कलकत्ता लौटकर आये। स्वामीजी ने उन्हें दक्षिणेश्वर ले जाकर श्रीरामकृष्ण की लीलाभूमि दिखाई। तत्पश्चात् उन्हें आलमबाजार मठ में लाने पर राजा अजीत सिंह का औपचारिक स्वागत किया गया। स्वामीजी के आदेशानुसार राजा को ठाकुर को अर्पित किया फल, मिष्टान्न एवं हलुआ दिया गया। महाराज ठाकुर के चित्र का दर्शन कर स्वामीजी के सम्मुख विनम्र भाव से बैठकर वार्तालाप करने लगे। स्वामीजी भी उनके प्रति श्रद्धाभाव से व्यवहार कर रहे थे। इस दृश्य को देखकर मठवासी मुग्ध हो गये। पुन: स्वामीजी दार्जिलिंग गये और एक माह तक रहकर स्वास्थ्य में थोड़ी उन्नति होने पर २८ अप्रैल को कलकत्ता लौट आये। मठ में जब भी स्वामीजी ठहरते मठवासियों को शास्त्रादि पढ़ाते, ध्यान करने की पद्धति सिखाते, उनलोगों की व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान बताते थे। प्रशिक्षण की सुचारु व्यवस्था के लिये स्वामीजी ने दैनन्दिन कार्यप्रणाली बना दी थी। मठ परिचालित करने हेतु संक्षिप्त नियमावली भी बना दी थी। स्वामी प्रेमानन्द के पत्र के अनुसार उस समय मठ-जीवन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। प्रात: ६-७ बजे तक ध्यान, तत्पश्चात् स्तवपाठ। इसके बाद व्यायाम कर हलुआ खाने के लिये परोसा जाता है। (प्रेमानन्दजी स्वयं ठाकुर पूजा करते थे।) सायंकाल ५-६ बजे हरि महाराज गीता का शांकरभाष्य पढ़ाते हैं। सन्ध्या आरती के पश्चात् पुन: एक घण्टा ध्यान एवं इसके बाद प्रश्नोत्तर की कक्षा होती है। इसी बीच ठाकुर के बारे में भी चर्चा की जाती है, कभी-कभी भजन भी गाये जाते हैं। स्वामीजी ने इस समय २३ नियम बनाये। बाद में एक और नियम उसमें जोड़ा गया। इसे साधारणत: आलमबाजार मठ की नियमावली कहा जाता है। इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने स्वयं मठ में अनुपस्थित होने पर उनको साप्ताहिक घटनावली भेजने की व्यवस्था कर दी थी। ब्रह्मचारी सुधीर (स्वामी शुद्धानन्द) द्वारा २५ जुलाई, १८९७ ई. को अंग्रेजी में भेजे गये विवरण का अनुवाद का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है।

पिछले सप्ताह की कार्यविवरणी निम्नरूप है।

जनसाधारण के लिये पाठ एवं चर्चा – अध्यात्म रामायण (५ दिन) – पाठक – स्वामी तुरीयानन्द ४ दिन एवं स्वामी प्रकाशानन्द १ दिन।

चैतन्यचरितामृत (१ दिन) – पाठक – ब्रह्मचारी सुधीर (शुद्धानन्द)।

व्यक्तिगत पाठ – स्वामी विरजानन्द, स्वामी तुरीयानन्द की सहायता लेकर राजयोग, आपके मद्रास एवं अन्य स्थानों पर प्रदत्त व्याख्यान, चैतन्यचरितामृत।

स्वामी प्रकाशानन्द – शनिवार 'ब्रह्मचर्य' शीर्षक पर ४५ मिनट व्याख्यान दिया। अपने वक्तव्य के लिये मनुसंहिता से कुछ अंश पाठ किया। इसके अतिरिक्त अध्यात्म रामायण और ब्रह्मवादिन् से पाठ किया।

स्वामी निर्भयानन्द – हितोपदेश के बंगला अनुवाद से एक अंश, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य उपनिषद के बंगला अनुवाद का एकांश एवं आपके कुछ व्याख्यान।

ब्रह्मचारी नन्द – व्याकरण कौमुदी से शब्दरूप रटा; ईशानुशरण व गीता के कुछ अंश और आपके व्याख्यान का पाठ किया।

विज्ञानानन्द – वेदान्त सूत्र के पाँचवे सूत्र तक पाठ किया। अवसर मिलने पर ओलीवर गोल्डस्मिथ की लिखी पुस्तक 'विकार ऑफ वेकफील्ड' पढ़कर समाप्त किया।

महेन्द्रनाथ गुप्त शनिवार प्रात: आये थे। उस दिन सायंकाल उन्होंने श्रीश्रीरामकृष्ण-वचनामृत का पाठ करके सुनाया। प्रसंग था, ठाकुर के साथ ईशान मुखर्जी का साक्षात्कार।

नियमानुसार दो दिन प्रश्नोत्तर की कक्षा होती है – ज्ञान व भक्ति तथा प्रत्येक का स्वरूप एवं साधना-पद्धति इत्यादि।

कोई नया श्रोता इस सप्ताह नहीं आया, कुछ युवक और उनके परिचित लोग आये थे।

स्वामी तुरीयानन्द एवं स्वामी निर्मलानन्द के साथ मैं (ब्रह्मचारी सुधीर) भी बागबाजार स्थित मिशन के साप्ताहिक पाठ के लिए गया था। आपका (स्वामीजी का) पत्र मैंने स्वामी ब्रह्मानन्द को दिखाया था। उन्होंने बताया कि वे मठ

लौटकर आवश्यक व्यवस्था आदि करेंगे। परन्तु अभी तक वे मठ आये नहीं।

ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य मद्रास पहुँच गये। पिछले बुधवार स्वामी नित्यानन्द महुला से लौट आये। स्वामी ब्रह्मानन्द से मिलने वे बृहस्पतिवार कलकत्ता (बागबाजार) गये थे और मठ आगामी दिन लौटे। महुला में राहत-कार्य पूर्ववत् चल रहा है। स्वामी सुबोधानन्द सोमवार कलकत्ता गये थे, बृहस्पतिवार लौटे। पिछले बुधवार से विज्ञानानन्द प्रति सन्ध्या दक्षिणेश्वर ध्यानाभ्यास करने जा रहे हैं।

पिछले मंगलवार हमलोग दक्षिणेश्वर घूमने गये थे। ग्रीन एकर की श्रीमती एलिनर हिसकक का पत्र, ग्रीन एकर वायेस की प्रतिलिपि और उनलोगों की कर्मसूची हमें प्राप्त हुई। कर्मसूची से ज्ञात हुआ है कि अगस्त से पहले सितम्बर के मध्य स्वामी सारदानन्द ने वेदान्त, सांख्य एवं योग पर दस व्याख्यान दिये। इसके अतिरिक्त 'भारतीय नाटक' शीर्षक पर भी एक व्याख्यान दिया।

हमलोगों का सर्व प्रकार कुशल-मंगल एवं आपके साथ के संन्यासियों को हमलोग भक्ति व श्रद्धापूर्ण प्रणाम निवेदन करते हैं।

स्वामीजी के अलमोड़ा से लिखे पत्र से ज्ञात होता है कि वे उपरोक्त विवरण पढ़कर आनन्दित हुए थे। परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी लिखा था कि पदार्थविद्या, रसायनविद्या सम्बन्धित कुछ यन्त्र की व्यवस्था कर एवं शरीर-विज्ञान के बारे में सरल ढंग से शिक्षा देना आवश्यक है।[२८]

मठ आलमबाजार में स्थित होने के समय रामकृष्ण-संघ के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई। स्वामीजी अप्रैल में दार्जिलिंग से कलकत्ता लौटे। १ मई, १८९७ ई. को सायंकाल तीन बजे बलराम वसु के घर पर ठाकुर के लगभग चालीस त्यागी एवं गृहस्थ भक्तों की सभा में उन्होंने एक ओजस्वी व्याख्यान दिया एवं ठाकुर के आदर्श तथा उपदेश के प्रचार-प्रसार के द्वारा जनसाधारण के आध्यात्मिक और सांसारिक कल्याण के यन्त्र-स्वरूप एक संघ स्थापित करने की घोषणा की। उपस्थित सभी ने इसका अनुमोदन किया। स्वामीजी ने अपने वक्तव्य के अन्त में कहा था, 'हम जिनके नाम पर संन्यासी हुए हैं, आपलोग जिन्हें जीवन का आदर्श बनाकर गृहस्थाश्रम में रह रहे हैं, उनके देहावसान के पश्चात् दस वर्ष में प्राच्य एवं पाश्चात्य जगत में उनके पुण्य नाम और अद्भुत जीवन का आश्चर्यजनक प्रसार हुआ है, यह संघ उन्हीं के नाम पर प्रतिष्ठित होगा। हम प्रभु के दास हैं। आपलोग इस कार्य में सहायक बनें।' ५ मई को द्वितीय बैठक में इस समिति का नामकरण 'रामकृष्ण मिशन' किया गया। इसका उद्देश्य एवं उद्देश्य-प्राप्ति हेतु स्वदेश व विदेश में कार्यप्रणाली किस प्रकार की हो, यह निर्धारित किया गया। मिशन के सभापति के पद को अलंकृत किया स्वामी विवेकानन्द ने। कलकत्ता केन्द्र के सभापति स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी योगानन्द सहसभापति नियुक्त किये गये। ठाकुर के शिष्य नरेन्द्रनाथ मित्र को सचिव नियुक्त किया गया। डॉ. शशिभूषण घोष एवं शरतचन्द्र सरकार उपसचिव तथा शरतचन्द्र चक्रवर्ती शास्त्रों के पाठक नियुक्त हुए। चार वर्ष स्वामीजी द्वारा किये गये 'ट्रस्ट डीड' के माध्यम से रामकृष्ण मठ को संवैधानिक स्वीकृति प्राप्त हुई। इसके आठ वर्ष पश्चात् रामकृष्ण मिशन ने भी संवैधानिक स्वीकृति प्राप्त की। १९१० ई. के अगस्त मास में तत्कालीन कार्यरत केन्द्रों को रामकृष्ण मठ या रामकृष्ण मिशन के शाखा-केन्द्र के रूप में स्वीकार किया गया।

५ मई, १८९७ ई. की बैठक में निम्नलिखित लक्ष्य को सम्मुख रखा गया –

"यह समिति (एसोसियेशन) 'रामकृष्ण मिशन' के नाम से जानी जायेगी।

संघ का उद्देश्य – मानवजाति के लौकिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिये उन सत्यों का प्रचार करना है, जिन्हें श्रीरामकृष्ण ने स्वयं के जीवन में अनुभव किया और व्यावहारिक जीवन में प्रयोग कर उसकी उपयोगिता बतायी।

मिशन का कर्तव्य - श्रीरामकृष्ण द्वारा आरम्भ किये गये आंदोलन के द्वारा, जिसमें सभी धर्मों को सनातन धर्म की अलग-अलग प्रकार से अभिव्यक्ति जानकर, धर्मावलम्बियों के मध्य मैत्री की भावना स्थापित करना।

रामकृष्ण संघ की कार्यप्रणाली इस प्रकार है –

(क) जनसाधारण के सांसारिक और आध्यात्मिक कल्याण के लिये उपयुक्त ज्ञान-दान करने योग्य व्यक्तियों को प्रशिक्षण उपलब्ध कराना।

(ख) ललित कला और उद्योग को प्रोत्साहन देना और

(ग) जन-साधारण में वेदान्त एवं अन्य धर्मों के विचारों का प्रचार इस प्रकार से करना जैसा कि श्रीरामकृष्ण के

जीवन से स्पष्ट हुआ था।

भारतीय कार्य विभाग

"इस मिशन का कार्य भारत के विभिन्न स्थानों पर मठ एवं आश्रमों की स्थापना करना होगा, जिससे संन्यासियों को प्रशिक्षित किया जा सके, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम अवलम्बन करनेवालों में से उनको भी प्रशिक्षित करना, जो दूसरों को शिक्षित करने के इच्छुक हों, उन साधनों की उपलब्धि का प्रयास करना, जिसके द्वारा प्रशिक्षितगण एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर जनसाधारण को शिक्षित कर सके।

"विदेशों के लिये मिशन का कार्य – संघ के प्रशिक्षित सदस्यों को - भारत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने और भारत व अन्य देश आपस में एक दूसरे को अपेक्षाकृत अधिक समझें, इस उद्देश्य से विदेश भेजना।

"चुँकि मिशन का उद्देश्य एवं आदर्श सम्पूर्णत: आध्यात्मिक और मानवतावादी है, इसलिये इसका राजनीति से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होगा।

"कोई भी व्यक्ति जो श्रीरामकृष्ण देव के इस कार्य में श्रद्धा रखता हो और मिशन के इन उद्देश्य एवं लक्ष्य की प्राप्ति में संघ को सहयोग देना चाहता हो, वह इसका सदस्य होने के योग्य होगा।[२९]

१२ जून, १८९७ ई. को कलकत्ता में आये भयानक भूकम्प से आलमबाजार मठ का भवन अत्यधिक क्षतिग्रस्त हुआ था। कलकत्ता के लगभग सभी भवनों में अल्प या अधिक क्षति पहुँची थी। अत: मठ अन्य स्थान पर स्थापित करना आवश्यक हो गया था। यद्यपि स्थाई मठ के लिये भूमि क्रय करने का प्रयास चल रहा था, परन्तु अब देर करना सम्भव नहीं था। बहुत प्रयास तथा वकीलों से परामर्श करने के पश्चात् गंगा के पश्चिमी तट पर बेलूड़ गाँव में भूमि क्रय करने की व्यवस्था की गई। असमतल भूमि को समतल कर गृह-निर्माण आदि कार्य करना था। अत: भूखण्ड के निकटस्थ नीलाम्बर मुखोपाध्याय के उद्यानभवन को किराये पर लेकर १३ फरवरी, १८९८ ई. को मठ आलमबाजार से स्थानान्तरित किया गया। यहाँ लगभग दस माह मठवासियों एवं भक्तों का कर्ममय जीवन भी स्मरण करने योग्य है। आलमबाजार में मठ की स्थिति के समय स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व में क्रमश: गुरुभाइयों को, श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रवर्तित एक महान उद्देश्य को स्थूल रूप में परिवर्तित होते देखकर, इसका अर्थ स्पष्ट होने लगा था। स्वामी ब्रह्मानन्द को रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित कर ठाकुर के त्यागी शिष्यों एवं गृहस्थ अनुयायियों को एक योग्य नेतृत्व देने में सक्षम होते देख स्वामीजी निश्चिन्त हुए थे। इस समय संघ के विकास व प्रशासन-व्यवस्था और राहत कार्य आदि में भक्तों एवं शुभचिन्तकों द्वारा दिये गये धनराशि का विवरण रखना तथा उसे प्रकाशित करने का अनुभव भविष्य के लिये बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ। औपचारिक रूप से कलकत्ता में आरम्भ हुए संघ के प्रधान केन्द्र के प्रति नए केन्द्रों के अनुगत होने की रीति भी इसी समय हुई थी। आलमबाजार मठ पर्व कई उपलब्धियाँ समेटे रामकृष्ण संघ के क्रमविकास में अपने योगदान के लिये सर्वदा स्मरणीय रहेगा।[३०] **(क्रमश:)**

पुस्तकें प्राप्त हुईं

१. आधुनिक मानव के लिये श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का महत्व : लेखक – स्वामी निखिलेश्वरानन्द

२. एकाग्रता और ध्यान : लेखक – स्वामी निखिलेश्वरानन्द

३. श्रीरामकृष्ण आरती : लेखक – स्वामी निखिलेश्वरानन्द

४. आधुनिक युवावर्ग और स्वामी विवेकानन्द
लेखक – स्वामी निखिलेश्वरानन्द
प्रकाशक–रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४००१२

५. सम्भवामि युगे युगे : लेखक – हुक्मीचन्द

६. श्रीरामकथा : लेखक – हुक्मीचन्द
प्रकाशक – श्री चारमरुवा सेवा ट्रस्ट, जी-३/७२ नेहरू प्लेस, नई दिल्ली – ११००१९, फोन - ०११-२६२१३२५२

७. सुमन-सौरभ : लेखक/सम्पादक–आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी

८. दोहा वाटिका : लेखक–आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी

९. हनुमत् शतक : लेखक–आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी
सम्पर्क सूत्र–साहित्य मंडप, चन्द्रलोक कालोनी, शहजादपुर, अकबरपुर- २२४१२२, फोन-८०८१५२८१२५

१०. श्री'म' दर्शन (चतुर्थ भाग):लेखक-स्वामी नित्यात्मानन्द

११. M. the Apostle and evangelist (vol iv)
प्रकाशक–श्रीम ट्रस्ट,५७९,सेक्टर १८वी, चंडीगढ़-१६००१८, फोन-८४२७९९९५७२, मूल्य-१००/-

१२. श्रीमद्भागवतपुराणम् (दोहा-चौपाइयों में)
लेखक-पं गिरिमोहन गुरु
प्राप्ति स्थान - श्री सेवाश्रम नर्मदा मन्दिरम्, नर्मदापुरम् कालोनी, नर्मदापुरम्, फोन -९४२५०४०९२१

स्वामी विवेकानन्द और सुभाषचन्द्र : वीर योद्धा

स्वामी सुपर्णानन्द, सचिव,

रामकृष्ण मिशन, इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर, गोलपार्क, कोलकाता

बंगला से अनुवाद – स्वामी उरुक्रमानन्द, ओंकारेश्वर

(गतांग से आगे)

सुभाषचन्द्र ने मात्र आठ मास तैयारी करके आई.सी.एस. की परीक्षा में चौथा स्थान प्राप्त किया था एवं उन्हें 'ट्राइपस' (Tripos) प्राप्त हुआ। परन्तु नौकरी करने के लिए तो उन्होंने आई.सी.एस. की परीक्षा नहीं दी थी। ब्रिटिश सरकार की प्रशासनिक क्षमता का पता लगाने के लिए ही यह परीक्षा उत्तीर्ण की थी, क्योंकि उसे जाने बिना उन्हें यहाँ से उखाड़ फेंकने का और कोई उपाय भी नहीं था। सुभाषचन्द्र ने अपने मित्र को लिखा था, 'हेमन्त, तुम्हें यह सुनकर दु:ख होगा कि मैंने आई.सी.एस परीक्षा पास कर ली है।'' उन्होंने यह परीक्षा तो पास कर ली, किन्तु एक वीर की भाँति उस पद का त्याग कर दिया था। वे अन्य एक नवयुवक की बात का स्मरण करने के पश्चात् स्वदेश लौट आए थे। वे अरविन्द घोष थे, जिन्होंने इस परीक्षा को पास तो किया था, पर उसे अस्वीकार कर भारत लौट आए थे। वीर सुभाष को यूरोप, अमेरिका और सारे संसार के बड़े-बड़े नेताओं ने उस समय देखा था। देश में वापस आकर उन्होंने गाँधीजी से साक्षात्कार किया था, जिन्होंने सुभाष को देशबन्धु चित्तरंजन दास के पास भेज दिया था। उन्होंने चित्तरंजन को ही उस समय अपने आदर्श नेता एवं गुरु रूप में स्वीकार किया था। चित्तरंजन के देहावसान के पश्चात् सुभाष ने फॉरवर्ड ब्लॉक दल की स्थापना कर एक स्वतन्त्र आन्दोलन आरम्भ कर दिया था। स्वामीजी का संन्यास पथ उनके लिए चयनित नहीं हुआ था। देश के स्वाधीनता आन्दोलन में मानो वे एक बलिस्वरूप ही थे और यही उनका कर्मक्षेत्र था। आजाद हिन्द सेना के सामने उन्होंने एक शपथ-वाक्य पाठ किया था – 'भगवान् के नाम पर मैं सुभाषचन्द्र यह शपथ लेता हूँ कि भारतवर्ष तथा ३८ करोड़ मेरे देशवासियों की मुक्ति के लिए मैं आजीवन संघर्ष करता रहूँगा।' (अग्नियुग, शैलेष डे, पूर्ण प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम खंड पृष्ठ २७९-८०)

प्रतिकूल परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाना सुभाष अच्छी तरह समझते थे। वहीं पर उनका वीरत्व और योद्धारूप प्रकट होता था। कर्मक्षेत्र ही उनका रणांगन था। कांग्रेस के नेतृत्व में पिकेटिंग आरम्भ हुई। दो-तीन स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ने लगी। निरस्त्र स्वयंसेवक सामरिक शृंखलाबद्ध होकर अपना कार्यभार अच्छे ढंग से सम्पन्न करने लगे। इस वाहिनी को ब्रिटिश सरकार ने अवैध घोषित कर दिया। सुभाषचन्द्र को लोग हँसीपूर्वक जी.ओ.सी (जनरल ऑफिसर कमांडिंग) कहा करते थे। इस अवैध घोषणा के बाद भी पाँच-पाँच स्वेच्छासेवी घर-घर जाकर खद्दर के कपड़ों को बेचा करते थे। इसके बाद पुलिस ने उन लोगों की धर-पकड़ आरम्भ कर दी। देशबन्धु चित्तरंजन दास को कारागार में डाल दिया गया। उस समय सुभाषचन्द्र कहीं अन्यत्र कार्यरत थे। उन्होंने सुना कि पुलिस उन्हें खोज रही है। तब उन्होंने स्वयं को फोन करके पुलिस से उन्हें बन्दी करने के लिए कहा। वे तो कारागार में जाने के लिए एक वीर के समान पुलिस की काली गाड़ी में चढ़ गये और छह माह उन्होंने कारागार में बिताए। सुभाषचन्द्र ने क्षुब्ध होकर जज को व्यंग्यपूर्वक

कहा था – 'मैं क्या कोई मुर्गी चोर हूँ कि मेरी सजा कम कर दी गयी।' उनका ऐसा ही साहस, विक्रम और तेज था। सुभाषचन्द्र ने प्रत्येक क्षेत्र में अपने इस साहसिक और वीरत्व का हमेशा ही परिचय दिया था।

आज यह सोचकर अवाक् हो जाना पड़ता है कि उनके समान एक देशप्रेमी एवं वीर योद्धा को बार-बार कारागार में जाना पड़ता था और तथाकथित देश के बड़े-बड़े नेता भी उन्हें शत्रुदल के विरुद्ध आन्दोलन में आगे कर देते थे। परन्तु उनकी कितनी बड़ी प्राणशक्ति थी! उन्होंने स्वयं कहा था, 'मैं धीरे-धीरे नीरव भाव से अपना जीवन-प्रायश्चित करते जाऊँगा। उसके बाद यदि मेरे सिर के ऊपर भगवान का हाथ होगा, इस पृथ्वी पर यदि सत्य की प्रतिष्ठा होगी, तब मेरे हृदय की बात मेरे देशवासीगण जरूर मानेंगे।' (अग्नियुग, द्वितीय खंड, पृ. ३०८) उन्होंने देश के लिए अपना जीवन न्योछावर किया था। सत्य के मूल्य को हम अस्वीकार नहीं कर सकते। किन्तु क्या आज का कोई युवक सुभाषचन्द्र बनने का स्वप्न देखता है? उन्होंने जिस आत्मत्याग की उच्च पराकाष्ठा निर्मित की थी, उसकी धारा हम अपना कर आगे बढ़ा नहीं पा रहे हैं। इसका कारण यह है कि उस आदर्श तक पहुँचने की शिक्षा देनेवाला कोई नहीं है। सभी समझौतावादी हैं। आज व्यक्तिगत जीवन भी कलंकमुक्त नहीं रहा। सुभाषचन्द्र के जीवन में ऐसी घटना भी हुई थी कि उन्हें कोलकाता में नजरबन्द अवस्था में छद्मवेष धारणकर देश का त्याग करना पड़ा था। उन्होंने समझ लिया था कि अब बाहर रहकर ही देश को जगाने का उपाय करना पड़ेगा और विश्वयुद्ध में भारत को भाग लेना होगा और इंग्लैण्ड के विरुद्ध जर्मनी का साथ देना होगा। उन्होंने इस हेतु हिटलर से दोस्ती का हाथ थामा तथा वहाँ से हिन्द महासागर एवं प्रशान्त महासागर को पार कर जापान में प्रवेश किया। हम यहाँ उनके वीरत्व और यथार्थ योद्धारूप का दर्शन करते हैं। उनका यह अभियान कल्पनालोक की कहानी को भी मात देता है।

देशबन्धु ने सुभाषचन्द्र को निर्देश दिया था – ''जाओ वीर, युद्ध करो।' देशवासियों की मेरुदण्डहीनता उनके वीरत्व को कम नहीं कर सकी। इसीलिए सुभाष ने देशत्याग का संकल्प लिया और पहले पेशावर गए, उसके बाद काबुल, वहाँ से रशिया सरकार से प्रार्थना करने पर उन्हें खिन्न ही होना पड़ा। रशिया सरकार अंग्रेजों के विरुद्ध जाना नहीं चाहती थी। उसके बाद वे इटली गये। उसके पश्चात् बर्लिन गये। वहाँ पहुँचकर हिटलर से मित्रता की, जिससे सारा विश्व स्तम्भित हो गया। उस समय सुभाष की आयु ४४ वर्ष थी। वहाँ भारतीय युद्धबन्दियों को लेकर उन्होंने भारतीय सेनावाहिनी यूरोपीय कमान को तैयार किया था। हिटलर और सुभाष का मेल देखकर अंग्रेज भयभीत हो गये थे। बर्लिन रेडियो से उन्होंने उद्घोषणा की – 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ।' हिटलर के साथ बन्धुत्व अवश्य किया था, पर उन्होंने उसकी गुलामी स्वीकार नहीं की। द्वितीय महायुद्ध के दौरान हिटलर ने बाध्य होकर ससम्मान सुभाष को जापान पहुँचा दिया था। ९ फरवरी, १९४३ ई. को उन्हें एक तेलवाहक सबमेरिन प्राप्त हुई थी। सबमेरिन का नाम था – जर्मन यू-१८०। इसमें बैठकर वे एटलाण्टिक महासागर के गर्भ में चलने लगे। प्रथमत: जर्मनी होते हुए हिन्द महासागर में आए। इस यात्रा को उन्होंने ९० दिनों में पूरा किया, जिसमें जर्मनी से जापान की यात्रा सम्पन्न की। जलयात्रा में न जाने कितनी हंगोर विशाल मछलियाँ देखी गयीं। जलपथ में ठण्डी -१० डिग्री थी और इस यात्रा को करते समय सुभाष और उनके संगियों के शरीर का रंग सफेद एवं पीला हो गया था। उनके जीवन में इन सब घटनाओं के उल्लेख से भी उनका वीरत्व कम करके आँकना हो जाता है। सुदीर्घ ६००० मील की जल-परिक्रमा करने में मानो उनकी सलिल समाधि-सी हुई थी, उस युद्ध जहाज में, टॉर्पिडो के आघात-प्रत्याघात के मध्य। २८ अप्रैल, १९४३ ई. को सुभाषचन्द्र ने सबमेरिन बदली कर ली। यह एक अत्यन्त साहस भरा पराक्रम था।

बाहर उनका रूप : अन्तत: जापान पहुँचकर उन्होंने आजाद हिन्द फौज (आई.एन.ए) का दायित्व संभाला। जापान में इस फौज को रासबिहारी बसु ने तैयार किया था। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस इस आजाज हिन्द फौज और आजाद हिन्द सरकार के सर्वाधिनायक थे। ९९ प्रतिशत अदृष्ट बाधाओं का अतिक्रमण करके मात्र १ प्रतिशत अनुकूलता को लेकर ही सुभाषचन्द्र ने अपने इस महत्कर्म में सफलता पाई थी। मुसोलिनी, हिटलर और तेजो इन सबमें कोई भी सुभाष के साथ तुलना करने योग्य नहीं थे। जापानी सेना की सहायता से आई.एन.ए. भारत पर आक्रमण करके भारत को स्वाधीन करनेवाले थे। इसी योजना के तहत जापानी प्रधानमंत्री जनरल तेजो सुभाष के साथ थे। जनरल तेजो ने स्पष्ट कहा था – "An inch of land occupies either by

nippon or INA on Indian soil, will be controlled by the provisional Govt. of free India." नेताजी का यह योद्धारूप किसी कथा-कहानी के समान ही अति रोचक है। अब हम देखते हैं कि अखण्ड भारतभूमि पर आजाद हिन्द फौज का संघर्ष कैसे हुआ। बर्मा से आई.एन.ए. फौज ने भारत के मूल भूखण्ड में प्रवेश किया था। उस समय वर्षा ऋतु थी। विपुल जलस्रोत की वजह से मार्ग अवरूद्ध हो गया था। युद्ध के कारण तथा रसद का जुगाड़ करना बन्द हो गया। २०० वर्ग मील का भूमिखण्ड उस समय फौज के कर्नल कियानी के अधीन हो चुका था। पार्वत्य प्रदेश की जाति-उपजाति ने सुभाषचन्द्र को उनके हृदय में स्थान दिया था। नागा सरदारों ने रसद की मदद करने की आप्राण चेष्टा की थी, किन्तु वह पर्याप्त नहीं हो पाई थी। पहाड़ी प्रदेश में रसद संचय करना बड़ा ही कठिन काम था। नागा लोग ब्रिटिश और जापानी; दोनों को नापसन्द करते थे। वे नेताजी के कण्ठस्वर में अपना स्वर मिलाकर कहते थे – ''चलो! दिल्ली चलो ! सब कुछ न्योछावर कर फकीर बन जाओ। नेताजी का यह स्वाधीन राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ९ देशों की मान्यता प्राप्त कर चुका था। आई. एन.ए. के अतिरिक्त आजाद हिन्द दल, बाल सेना, टोकियो कैडेट, सिक्रेट सर्विस, झाँसीरानी रेजिमेण्ट आदि भी कार्यरत थे।

उस समय जापानी सरकार ने नेताजी के हाथ में अण्डमान निकोबार को समर्पित कर दिया था। सन् १९४३ के ३० दिसम्बर को नेताजी ने अण्डमान में आई.एन.ए.सरकार की त्रिवर्ण पताका को फहराया था। सेल्यूलर जेल को भी उन्मुक्त कर दिया गया। अण्डमान और निकोबार द्वीप को एक नया नाम दिया गया – स्वहित और स्वराज्य द्वीप। सन् १९४४ ई. की २८ फरवरी को नेताजी की हत्या का षड्यन्त्र रचा गया था। कोहिमा और मणिपुर में भीषण युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इम्फाल और मैरांग में भी आई.एन.ए. की पताका फहरा दी गयी थी। यह विजय गाथा हममें श्रद्धा का संचार कर देती है। विख्यात अध्यापक प्रतुल गुप्त महाशय ने नेताजी की जयन्ती के अनुष्ठान के बाद नरेन्द्रपुर आश्रम की बैठक में कहा था – अन्तिम समय में जापानी सरकार ने नेताजी को सहायता देने से अस्वीकार कर दिया था। इसका फल यह हुआ कि पूर्वांचल में नेताजी को पराजय का सामना करना पड़ा था। द्वितीय युद्ध में जापान की पराजय के बाद नेताजी की योजना एक अनिश्चितता के दौर से गुजर रही थी। किन्तु मणिपुर युद्ध में ४००० हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई सैनिकों ने अपने प्राण गँवाए थे। उस समय की सब घटनाएँ कहानी के समान अविश्वसनीय लगती हैं।

हम जानते हैं कि ताइहुकू में एक विमान दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गयी थी, इस बात पर विश्वास नहीं करते। उनके शरीर के न तो कोई अवशेष पाए गए और न ही इस घटना का कोई विशेष अनुसन्धान ही किया गया था, केवल उनकी मृत्यु का समाचार दिया गया था। इसके पार्श्व में अवश्य ही कोई राजनैतिक षड्यन्त्र की ही बात थी।

हमने देखा है कि सुभाषचन्द्र ने अवश्य ही सशस्त्र संग्राम प्रारम्भ किया था, परन्तु सामरिक दृष्टि से वह सफल नहीं हो पाया। इसका क्या यह अर्थ है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में उनका कोई अवदान नहीं है? क्या उनके सब प्रयत्न व्यर्थ चले गये? द्वितीय युद्ध में ब्रिटिश लोग विजयी हुए थे, तो वे भारत को स्वाधीन करके स्वयं यहाँ से चले क्यों गये? जापानी सामरिक विशेषज्ञ जनरल कावाबे ने कहा था – सुभाषचन्द्र की इस असफलता के पीछे अनेक कारण थे। पहला कारण यह था कि यदि इम्फाल की युद्धनीति सफल हो जाती, तो एशिया के युद्ध के इतिहास में एक नया अध्याय रचित हो जाता। नेताजी की पराजय के इतिहास के पार्श्व में सत्य का अनुसन्धान यदि न किया जाए, तो यह उनके वीरत्व का अपमान ही करना है। यह वीरगाथा पृथ्वी के इतिहास में एक अनन्य कहानी है। भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में नेताजी के प्रभाव ने कोई स्थान ही नहीं पाया। शासक और शोषक के इतिहास-लेखन में मिथ्याचार ही अधिक रहा करता है। आई.एन.ए. के युद्ध के बन्दी-फौजियों के विषय में लालकिले में निर्णय हुआ था। उस समय सुभाषचन्द्र का कोई संधान नहीं मिला था और उनकी फौज के युद्धबन्दियों को ब्रिटिश सरकार के द्वारा शत्रु के रूप में देखा जा रहा था। साथ ही सुभाषचन्द्र को भी देशशत्रु के रूप में लिया जा रहा था। इन सब युद्धबन्दियों को प्राणदण्ड की सजा मिलेगी। पूरे भारत के लोग सुभाषचन्द्र द्वारा लड़ी गयी इस युद्ध की कहानी जानते ही न थे। ब्रिटीश सरकार इन युद्धबन्दियों को देश के सामने देशद्रोही करार देना चाहती थी। लालकिले में घटे इस निर्णय के विरोध में सारा देश विद्रोह कर उठा। जनगण के साथ भारतीय सशस्त्र सेना ने भी साथ दिया था। उनके प्राणप्रिय नेता के इस अद्वितीय उद्यम को देखकर वे सब आश्चर्यचकित हो गये थे। इस निर्णय के विरोध में बम्बई की

नवीन सेना ने विद्रोह की घोषणा कर दी। ब्रिटिश सरकार भय से आक्रान्त हो गयी। उनकी मृत्यु की घोषणा करके भी वे सुभाषचन्द्र की आत्मा के भय से भयभीत हो गये। इसके बाद ही ब्रिटिश इस देश से चले जाने को बाध्य हुए थे। यह भी सत्य है कि नेताजी सुभाषचन्द्र ने भारत भूमि को स्वाधीन कर मुक्ति दिलाई थी। वास्तव में वे ही थे इस उपमहाद्वीप के मुक्तिदाता।

विवेकानन्द की भावनाओं का प्रतिफलन सुभाषचन्द्र में था। स्वामीजी और नेताजी की देश-यन्त्रणा के मूलकारण को देशवासी समझ ही नहीं पाए। हमारे आनन्द का विषय यही है कि इन दोनों ने ही युद्ध किया था और दोनों ने कभी भी प्रतिकूल परिवेश को स्वीकार नहीं किया था। इसका कारण था सत्य के प्रति उनकी प्रीति तथा सत्य पर उनका दृढ़ विश्वास। ये दोनों ही महापुरुष युद्धविजयी हुए थे। उनकी सत्य पर प्रतिष्ठा हुई थी। दोनों ने इस विश्व-रंगमंच पर युद्ध करते-करते ही अकाल समय ही विदाई ली थी और पीछे रख गये थे अपना अतुलनीय प्रभाव। वह प्रभाव कालजयी और वीरत्वपूर्ण था। ऐसे पुरुष ही देश में एक नये भावस्रोत फैलाते हैं और राष्ट्रीय धमनियों में प्राण-रस का संचार करते हैं। 'सुभाषचन्द्र बसु – तरुणेर स्वप्न' में उन्होंने युवकों को एक निर्देश दिया था – 'अत्याचार को देखते हुए भी जो व्यक्ति उसके निवारण की चेष्टा नहीं करता, वह तो अपने मनुष्यत्व का ही अपमान करता है एवं अत्याचारी व्यक्ति भी मनुष्यत्व का अपमान करता है।' यही उनका जीवन-वेद था। अन्यत्र (Cross Roads) नवयुवकों को उन्होंने कहा था, 'मैं जब नहीं रहूँगा, मेरी इच्छा है यह बात उन तक पहुँचाई जाए, जिससे वे सारे जीवन की गंभीरतर समस्याओं के विषय में उत्सुक होंगे। विज्ञान की अनवरत प्रगति के कारण सत्य और भी अधिक रूप में प्रकट होगा। पहले जो भौतिकवाद की धारणाएँ थीं, आजकल वैज्ञानिक प्रगति के कारण सब बदल गयी हैं। वेदान्त के सत्य तथा आधुनिक युग के वैज्ञानिक सत्य के विषय में परस्पर समन्वय एवं तारतम्य स्थापित करने हेतु सुभाष ने नवयुवकों का आह्वान किया था। Macrosome तथा Microsome के सत्य उद्घाटन के लिए विज्ञान और वेदान्त का मेल-बन्धन होना आवश्यक है। समष्टि सत्य ब्रह्म और व्यष्टि सत्य आत्मा की महिमा की उपलब्धि ही एक अखण्ड उपलब्धि होती है। नेताजी का पथ बहिर्विषय ही सर्वाधिक रूप से व्याप्त था। इसका कारण यह था कि वे गरीबों के मसीहा और शोषित वर्ग के सदैव मित्र थे। वे पवित्र आत्मा के आनन्द से सदा भरे रहते थे।

संन्यासी का देशप्रेम कैसा होता है, यह हम सुभाषचन्द्र के जीवन का अवलोकन करने पर समझ सकते हैं। संन्यासी के आह्वान पर सुभाष का आगमन उनका कार्य करने के लिए हुआ था। संन्यासी तो स्वयं कार्य कर नहीं पाएँगे, यह बात मानो हमारे मन में जाग्रत रहना चाहिए। स्वामीजी ने जड़वादियों के चित्त में चैतन्य ईश्वर की प्रतिष्ठा की थी तथा सुभाष के द्वारा जो उन्होंने करवाया, वह था लाख-लाख लोगों के मन में स्वाधीनता की एक ज्वलन्त आकांक्षा जगाना। ये दोनों महत् कार्य इन दोनों महापुरुषों के आगमन का प्रत्यक्ष फल ही है। इसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। उन दोनों ने चिरन्तन का स्पर्श किया था, इसीलिए उनका प्रभाव भी चिरन्तन ही है तथा इन दोनों के लिए हमारे गर्व की भी सीमा नहीं है और क्रन्दन की भी। हमने केवल अपने घर के इन सपूतों को ही नहीं खोया है, बल्कि हमने बाद में समझा है कि हमने उन दोनों के रूप में दो देवदूतों को भी खो दिया है। मनुष्य की सीमाओं का अतिक्रमण करके वे देवलोक के निवासी थे। एक विदेश में विजय की पताका को फहरा कर स्वदेश की देवभूमि लौटा था और यहाँ अपने शरीर का त्याग किया। दूसरा सपूत अपने घर लौट नहीं पाया। इसीलिए आज भी इस प्रियजन के आगमन की प्रतीक्षा में लाखों देशवासी करते हैं, किन्तु उनका आक्षेप है 'सुभाष घर नहीं लौटे।' किन्तु इतनी ही सान्त्वना है कि हमने अपनी स्वाधीनता को पाया था, जिसमें उनका योगदान अद्वितीय था। स्वयं रवीन्द्रनाथ ने अपनी वाणी में यह कहा था – 'आशीर्वाद देता हूँ, इस संसार में विदा होने के पूर्व कि देश के दुख को तुमने अपना दुख माना था। देश की सार्थक मुक्ति निकट आ रही है, तुम्हारा पुरुषार्थ वहन करते हुए।'' (सुभाषचन्द्र, पृ.११७)

सुभाष ने अपनी चित्र पर एक ऑटोग्राफ दिया था – 'स्वाधीनता अथवा मृत्यु – श्री सुभाषचन्द्र बसु।' इस वाक्य में अथवा को पोंछकर एवं मृत्यु लिखना ही समीचीन होगा। अर्थात् वे स्वाधीनता अर्पण करके स्वयं चले गये। एक यथार्थ सत्य ही है। हम अपना सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करते हैं। ○○○ **(समाप्त)**

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/१)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

निर्गुण निराकार और सगुण-साकार उपासना में श्रेष्ठ कौन?

गीता के बारहवें अध्याय की भूमिका के विषय में विचार करते हुए हम पाते हैं कि अर्जुन भगवान से पूछता है –

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।१।।

अर्जुन उवाच (अर्जुन बोला) ये भक्ताः एवम् सततयुक्ताः त्वाम् (जो भक्तलोग इस प्रकार से सतत युक्त रहकर आपको भजते हैं) च ये अक्षरम् अव्यक्तम् अपि पर्युपासते (और दूसरे जो केवल अक्षर निराकार ब्रह्म को ही भजते हैं) तेषाम् योगवित्तमाः के (उनमें से उत्तम योगवेत्ता कौन हैं)?

''जो भक्तलोग इस प्रकार से सतत युक्त रहकर आपको भजते हैं और दूसरे जो केवल अक्षर निराकार ब्रह्म को ही भजते हैं; उनमें से उत्तम योगवेत्ता कौन है?''

यहाँ 'सततयुक्त' के साथ 'इस प्रकार' कहने का क्या तात्पर्य है? ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में भगवान ने भक्ति का सारतत्त्व व्यक्त किया था। उसी को प्रश्नबीज बनाकर यहाँ बारहवें अध्याय में अर्जुन ने यह प्रश्न पूछा है - ''इस प्रकार सततयुक्त होकर जो आपकी पर्युपासना करते हैं और दूसरे जो अक्षर और अव्यक्त की उपासना करते हैं, इनमें उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?'' यहाँ पर अर्जुन ने यह नहीं पूछा कि भक्ति श्रेष्ठ है या ज्ञान? कुछ लोग साकार-सगुण परमेश्वर की उपासना करते हैं और कुछ लोग निराकार-निर्गुण परमेश्वर की उपासना करते हैं और ये दोनों एक ही फल की प्राप्ति करते हैं, यह भी अर्जुन जानता है और भगवान भी यही कहेंगे कि भक्ति या ज्ञान किसी भी रास्ते से चलकर आओ, मेरे पास ही पहुँचोगे।

अर्जुन का प्रश्न यह है कि निर्गुण-उपासना का रास्ता अधिक सुलभ है या सगुण-उपासना का? और यहाँ पर अर्जुन ने जिस **एवं** शब्द का प्रयोग किया है, वह अपने आपमें बहुत महत्त्वपूर्ण है। ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में बताए गए भक्त के लक्षणों के माध्यम से भक्त की साधना भी हमारे समक्ष प्रदर्शित हुई। जो भक्त है, वह भक्ति की साधना कैसे करे? साधना के लक्षण क्या हैं? भगवान का उत्तर है कि शरीर-इन्द्रियों आदि के द्वारा जो भी कर्म किया जाए, वह उन्हीं के निमित्त हो। झाड़ू लगाने जैसे सामान्य कर्म के प्रति एक बुद्धि यह हो सकती है कि अपना घर साफ-सुथरा रखने के लिए हम झाड़ू लगाते हैं और दूसरी बुद्धि यह हो सकती है कि हमारे घर में पूजा-स्थल है, मन्दिर है, स्वयं भगवान यहाँ विचरण करते हैं, उनके चरणों में कोई गन्दगी न लगे, कोई कंकड़ न चुभे, इसके लिए हम घर को साफ रखते हैं। यही दूसरा भाव जब किसी कर्म के पीछे होता है, तो उसमें परिवर्तन ला देता है। पहला भाव यदि कर्म के बन्धन का कारण बनता है, तो दूसरा भाव कर्म के बन्धन को काटने का साधन बनता है। जिस प्रकार पैर में काँटा चुभ जाए, तो दूसरे काँटे की सहायता से हम उस काँटे को निकाल लेते हैं, उसी प्रकार कर्म के सहारे ही कर्म को काटना पड़ता है। कर्म में बाँधने की शक्ति है और कर्म में ही काटने की भी शक्ति है। परन्तु उस कर्म-बन्धन

को छिन्न करने की शक्ति को प्रकट करना पड़ता है। उसकी वह छिपी हुई शक्ति **मत्कर्मकृत्** का भाव कर्म के पीछे रहने पर प्रकट होती है।

कर्म के पीछे का भाव प्रमुख

स्वामी विवेकानन्द के एक शिष्य थे स्वामी आत्मानन्द जी। वे अत्यन्त सरल और निःस्पृह थे। स्वामी विवेकानन्द के शरीर शान्त होने के बहुत बाद की बात है। आत्मानन्दजी से लोगों ने पूछा कि वे अपने पहनने के कपड़ों का तो विशेष ख्याल नहीं रखते, फिर अपने बिस्तर की सफाई के प्रति विशेषरूप से जागरूक रहने का कारण क्या है? आत्मानन्दजी ने उन्हें बताया कि उनके गुरुदेव एकबार स्वप्न में उनके पास आए और उनके बिस्तर पर लेटकर उन्होंने उनसे अपने पैर सहलाने के लिए कहा। तभी से वे अपने बिस्तर की सफाई का विशेष ध्यान रखने लगे कि पता नहीं कब फिर उसी तरह उनके गुरुदेव उस बिस्तर पर लेटना चाहें। यह वैसा ही भाव है कि पता नहीं कब किधर से नन्दनन्दन घनश्याम आ जाएँ। प्रत्येक कर्म के पीछे का यही भाव परमफल का दायक होता है।

माताएँ भोजन बनाती हैं, उसके पीछे एक भाव अपने परिवार को तृप्त करने का तो रहता ही है, पर एक भाव यह भी रहता है कि पहले भगवान को अर्पित करके उनका प्रसाद ग्रहण करने के लिए यह सारी रसोई है। कर्म के प्रति इतना-सा यह जो दूसरा भाव आया, उससे कर्म में छिपी हुई उसकी असीम शक्ति प्रकट होने लगती है और ज्योंही कर्म के भीतर की शक्ति प्रकट होने लगती है, वह अपने ही बन्धनों को काटने लगती है। इसीलिए भगवान ने कहा – **मत्कर्मकृत्** – मेरे लिए कर्म करनेवाला बने। जीवन में जितने भी कर्म हैं, उन समस्त कर्मों का सम्बन्ध हम भगवान के साथ जोड़ सकते हैं। यह गीता का तात्पर्य है और यही गीता की विशेषता है। जीवन में होनेवाले समस्त कर्मों को भगवान के साथ कैसे युक्त करें, यही बताने के लिए गीता की शिक्षा है। ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में भगवान अर्जुन को भक्त के लक्षण और भक्त बनने की साधना के विषय में समझाते हैं कि मनुष्य जो भी कर्म करता है, उसके शरीर से जितनी भी क्रियाएँ होती हैं, उन सबके पीछे भाव यह है कि वे सब प्रभु के ही लिए हैं। यह भक्त और उसकी साधना का पहला लक्षण है, गुण या विशेषता है। फिर भगवान कहते हैं – **मत्परमो** – मुझको ही परम माने। मुझे छोड़कर संसार में अन्य किसी को न जानता हो। परमात्मा को ही परम मानकर जो संसार में सारी क्रियाएँ करता है, अपने प्रभु के अलावा वह किसी और को रिझाना नहीं चाहता, ऐसा जो भक्त होता है, वह कुटिल नहीं हो सकता, क्योंकि वह जानता है कि प्रभु सर्वज्ञ हैं, सर्वान्तर्यामी हैं। वह यह निश्चित जानता है कि प्रभु मन के भाव को पकड़ लेते हैं। उनके सामने किसी प्रकार की कुटिलता नहीं चल सकती। उन्हें कभी ठगा नहीं जा सकता। इसीलिए भक्त जो भी कार्य करता है, वह प्रभु के लिए ही करता है।

अब यदि किसी भी क्षण हमारे भगवान यहाँ पधार सकते हैं, यह सोचकर हम अपने कमरे को साफ करते हैं, तो सोच लीजिए, कितने सुन्दर ढंग से हम कमरे की सफाई करेंगे। अपने परमप्रिय परम श्रद्धेय को मन में रखकर किए जानेवाले कर्मों में इसी तरह का सौष्ठव रहता है। भगवान आगे कहते हैं – **मद्भक्तः** – वह मेरा ही भक्त हो। मेरा ही भजन करे। भजन करने से तात्पर्य है, उसमें रुचि का होना। मन का जाकर उनमें घुस जाना। श्रद्धा इससे भिन्न एक भावना है। कोई किसी का श्रद्धापात्र हो, तो उसके अत्यन्त आन्तरिक प्रेम का भी पात्र हो, यह आवश्यक नहीं है। इसीलिए यहाँ भगवान कहते हैं, परम श्रद्धा भी मुझ पर ही करो और अपने हृदय का सारा प्रेम भी मुझ पर ही उड़ेल दो। भक्त की साधना का यह एक सोपान है और इसी प्रकार धीरे-धीरे हम इस दिशा में अग्रसर होते हैं।

संसारासक्ति राग और द्वेष का मूल

इस प्रकार मत्कर्मकृत्, मत्परमो और मद्भक्तः ये तीन भगवान के साथ हमको जोड़नेवाले विशेषण बताए। मान लीजिए ईश्वर के साथ हमने अपने समस्त कर्मों को जोड़ दिया, अपने हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा उन्हीं को दे दी और अपना सारा प्रेम भी उन्हीं के चरणों में उड़ेल दिया, तो अब संसार के साथ क्या करें? तो कहते हैं – **सङ्गवर्जितः** – जो आसक्ति संसार के पदार्थों में रहती है, उससे बचना चाहिए, क्योंकि यह आसक्ति ही दुख का कारण बनती है। इसीलिए भगवान कहते हैं, जब तक सांसारिक पदार्थों में तुम्हारी आसक्ति बनी रहेगी, तब तक तुम्हारा मन वहीं उलझा रहेगा। तब भला तुम मुझमें कैसे आसक्त हो सकोगे? मन एक साथ दो जगह पूरी तरह से आसक्त हो नहीं सकता। कोई ऐसा समझे कि संसार को और ईश्वर को एक साथ प्यार करता है, तो उसके प्यार में तीव्र एकाग्रता या समूचा दान नहीं

है और भगवान तो ऐसे लीला-नट हैं कि वे अपने लिए भक्त का समूचा प्यार चाहते हैं, पूरा हृदय चाहते हैं। इस बात से वे कभी समझौता नहीं कर सकते कि उनका भक्त उनके अलावा किसी और को भी अपना प्रेम दे। इसीलिए कहते हैं – सङ्गवर्जित: – संसार में जो आसक्ति के केन्द्र हैं, उनसे अपने मन को हटाए। **निर्वैर: सर्वभूतेषु –** किसी के भी प्रति वैर का भाव न रखे। वैर शब्द बड़ा लाक्षणिक है। हम बेर (बदरिका) नामक जो फल खाते हैं, उसके वृक्ष की लकड़ी को जलाने से जो ताप होता है, वह बहुत तेज होता है। इसीलिए शीतप्रधान प्रदेश में बेर की लकड़ी जमा लेते हैं। उसी तरह से भीतर यदि वैर की अग्नि जला ली जाए, तो हृदय को ही भस्म कर दे। ईर्ष्या-द्वेष मनुष्य को भीतर से खोखला कर देते हैं। इसीलिए कहा – जो निर्वैर भी हो, वह भक्त मुझको प्राप्त करता है। भगवान की इन्हीं बातों को पकड़कर अर्जुन ने बारहवें अध्याय के प्रारम्भ में अपना प्रश्न प्रस्तुत किया। भक्ति-शास्त्र में बारह की संख्या बहुत महत्व रखती है। एकादशी के बाद जो द्वादशी तिथि आती है, उसको हरि-वासर या भगवान का दिन कहते हैं। एकादशी का व्रत जो रखा जाता है, वह भी इस द्वादशी की प्रधानता से ही। भागवत् में द्वादश स्कन्ध हैं। भगवान के नाम का द्वादशाक्षर मन्त्र है। नारायण के जिन आदित्य रूपों की कल्पना की गई है, वे भी संख्या में द्वादश हैं। इन बारह आदित्यों में भी बारहवें आदित्य का भगवान वामन के रूप में अवतार हुआ। गीता में भक्तियोग नाम का यह अध्याय भी बारहवाँ है। सरल हृदय से अर्जुन भगवान से प्रश्न करता है। भगवान के ज्ञान को चुनौती देना, उसका उद्देश्य नहीं है। कोरे सिद्धान्त के लिए उसका यह प्रश्न नहीं है। व्यवहार में उसे जो कठिनाई लगती है, उसको हल करने के लिए उसका यह प्रश्न है।

भक्त कौन?

अर्जुन का प्रश्न है कि भक्त के ये पाँच गुण कि वह भगवान के लिये ही कर्म करनेवाला हो, भगवान ही उसके लिये सबसे परम हों। भगवान का ही वह भक्त हो, संसार के विषयों के प्रति उसकी आसक्ति न हो और सभी भूतों में निर्वैरभाव का जो पोषण करे, उन सबको जिसने अपने जीवन में उतार लिया है और इन गुणों से जो सतत युक्त है, वह जो आपका सतत चिन्तन करता है और सब जगह आपके समीप रहता है, ऐसा जो साकार सगुणोपासक भक्त और निराकार निर्गुणोपासक भक्त में से कौन योगवित्तम है? भक्त शब्द का अर्थ समझ लें। 'भज् सेवायाम्' जब प्रेमपूर्वक किसी के नाम का गान किया जाता है, तब चित्त की वृत्तियाँ जो अभी विषयाकार हैं, वे गल जाती हैं। वही वृत्तियाँ हरि के साँचे में ढलकर हरिमय हो जाती हैं, भगवदाकार हो जाती हैं। यह भक्ति का पहला अर्थ है। दूसरा अर्थ भक्ति का है – **भञ्जनो आमर्दने –** जिसके द्वारा भाग कर दिया जाए, विभाग कर दिया जाए, वह भक्ति है। जो बता देती है कि यह है संसार और यह है परमात्मा। संसार के विभाग को छोड़ दो और परमात्मा के विभाग में चले जाओ। जीवन में भगवान प्रमुख बन जाएँ, यह भक्त की उपासना है। भक्त के ये सब गुण गिनाकर भगवान से अर्जुन कहता है, 'ये भक्त ऐसे ही हैं, भगवन् ! इसी प्रकार से भक्ति करते हैं। परन्तु दूसरे भक्त वे हैं, जो अक्षर – जो कभी क्षरित नहीं होता। जो अव्यक्त है, जो कभी व्यक्त नहीं होता, मन जिसको पकड़ नहीं पाता, वाणी जिसका वर्णन नहीं कर पाती, ऐसे निराकार, निर्गुण, सतत व्यापक तत्त्व की जो उपासना करते हैं, जो विराट् में, जो चतुर्भुजरूप में, जो मानुषी रूप में सबमें बिंधा हुआ है, जो सभी रूपों का अधिष्ठान है, जिस निर्गुण निराकार के ऊपर यह विराट् वृक्ष मानो टिका हुआ है, जो अरूप रूप की उपासना करते हैं, इन दोनों प्रकार के भक्तों में योग को जाननेवालों में, किसका रास्ता श्रेष्ठ है?

सततयुक्त होने का अर्थ है कि उनके लिए किसी भी प्रकार का काल का बन्धन नहीं है। हर समय वे भगवान से जुड़े हैं और हर समय, हर स्थान पर वे उनकी उपासना करते हैं। जो भक्त इस प्रकार भगवान से युक्त है, भगवान का ही स्मरण करता है और भगवान के निकट बना रहता है। दूसरे प्रकार का भक्त वह है, जो निराकार की उपासना करता है, अपने चित्त को निराकार ब्रह्म में लगाता है। वह रूप से अपनी वृत्तियों को हटाकर अरूप में अपने ध्यान को केन्द्रित करता है और इस विधि से परमात्मा को जानने का प्रयत्न करता है। ऐसे जो दो प्रकार के योगी हैं, योग को जाननेवाले हैं, उनमें श्रेष्ठतर योगी कौन है? तात्पर्य यह कि जो इस प्रकार से भगवान का सगुण, सरूप, साकार ब्रह्म का भजन करते हैं और दूसरे वे जो निर्गुण, अरूप, निराकार ब्रह्म की उपासना करते हैं, साधना के इन दो मार्गों में से अधिक अच्छा रास्ता कौन-सा है? **(क्रमश:)**

साधुओं के पावन प्रसंग (५६)

स्वामी धीरेशानन्द और स्वामी मुक्तानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

''लघुवाक्यवृत्ति में है – जाग्रतकाल में चित्त की एक वृत्ति विलय होकर जब तक एक अन्य वृत्ति का उदय नहीं होता, उस वृत्तिहीन अवस्था अर्थात् सन्धिकाल में सर्वकल्पनाविरहित निर्विघ्न आत्मचैतन्य स्पष्ट रूप से प्रकाशमान होता है। सन्धि का उदाहरण एक मुक्ता की माला है। तुम यदि अच्छी तरह से देखोगे, तो देख पाओगे कि दो मुक्ता माला के बीच में एक धागा है, जो सभी मुक्ता को पकड़ के रखा है। दूर से केवल सुन्दर माला दिखती है, धागा नहीं दिखती। वह धागा या चैन चैतन्यमय है। प्रत्येक मुक्ता हुई एक-एक चित्तवृत्ति। वह चित्तवृत्ति चैतन्य सागर में लहर जैसी उठ रही है और गिर रही है। यदि प्रत्येक वृत्ति 'अहं ब्रह्मास्मि' के रूप में उठती रहती है, तो ज्ञान हो जाता है।

''वेदान्त-सार में है – 'अहं नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-सत्य स्वभाव-परमानन्द-अनन्त-अद्वय ब्रह्मास्मीति अभयाकारकारिता चित्तवृत्तिरुदेति' – मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य-स्वरूप, परमानन्द, अनन्त, अद्वितीय ब्रह्म, इस प्रकार चित्तवृत्ति का जन्म और वह चैतन्यप्रतिविश्वग्राहिणि होता है।

''केनोपनिषद् में है – प्रतिबोधविदितं मतममृतत्त्वं हि विन्दते – जिस समय बुद्धिवृत्ति समूह में आत्मरूप ब्रह्म विदित होता है, उसी समय वास्तविक ज्ञान होता है, क्योंकि उस ज्ञान के फल से ही मोक्षलाभ होता है।

''इस ब्रह्मसाक्षात्कार के फलस्वरूप हृदय की ग्रन्थि अर्थात् अविद्या-वासना आदि नष्ट हो जाती हैं और सभी संशयों की निवृत्ति हो जाती है।

''वेदान्तसार में दो शब्द हैं – 'सत्य' और 'मिथ्या'। असत्य अर्थात् नहीं है और नहीं देखा जाता है – जिस प्रकार बन्ध्यापुत्र, खरगोश का सींग। मिथ्या अर्थात् नहीं, किन्तु देखा जाता है – जिस प्रकार मरीचिका में जल, रज्जु में सर्प, सुक्ति में रजत।

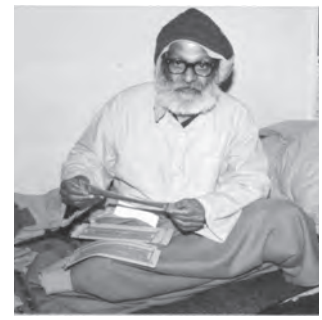

स्वामी धीरेशानन्द

''यह संसार हमारे लिए वास्तव और सत्य के रूप में बोध हो रहा है, किन्तु निद्रा के समय जगत मन से विलीन हो जाता है। जो वस्तु अतीत, वर्तमान और भविष्य काल में रहती है, वही एकमात्र सत्य है। इस संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो तीन काल में रहती है। इसीलिए संसार मिथ्या है।

''संसार की सत्ता को लेकर अनेक मतवाद हैं। संसार सत्य है, इसीलिए देखा जाता है – यह सृष्टिदृष्टिवादियों का मत है। इस मत से संसार अनित्य है, किन्तु मिथ्या नहीं है। व्यावहारिक सत्य स्वीकृत है।

''संसार देखा जाता है इसीलिए है – यह दृष्टिसृष्टिवादियों का मत है। इस मत से संसार की प्रातिभासिक सता स्वीकृत है। संसार स्वप्नवत् है।

''संसार नहीं है, देखा भी नहीं जाता है – एक ब्रह्म ही है। यह अजातवादियों का मत है। इस मत से एकमात्र पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की जाती है।

''देखो, इस 'मैं' को लेकर ही सभी जंजाल है। यह 'मैं' है, इसीलिए जगत है; फिर 'मैं' नहीं रहने से जगत् नहीं रहता है। ज्ञानी 'अहं ब्रह्मास्मि' के द्वारा 'कच्चा मैं' को विलय करता है और भक्त 'मैं शरणागत' कहकर 'कच्चा मैं' को विलय करता है।''

तदुपरान्त महाराज ने उत्तरकाशी, हृषिकेश, हरिद्वार में जिन साधुओं का संग किया है, उनलोगों के सम्बन्ध में मुझे बताया। कैसे मनुष्य निरालम्ब होकर हिमालय गिरि-गुफा में तपस्या करते हैं और इन सब महात्माओं के त्याग-वैराग्य, शास्त्रज्ञान, पवित्र जीवन की घटनाओं को जानने का मुझे

बहुत कौतूहल था।

१९७७ ई. के अक्तूबर महिने में मैं काशी सेवाश्रम के १० नम्बर वार्ड में प्रात:-सन्ध्या घण्टा-पर-घण्टा व्यतीत करता था। वे स्वयं ही पुराने दिनों की और उन्होंने जिन महापुरुषों का संग किया है, उनकी बातें बताते थे।

देवीगिरिजी के प्रसंग में उन्होंने कहा था, १९३६ ई. के अगस्त महिने में उत्तरकाशी के लक्षेश्वर में उनका दर्शन किया। उस समय वे एक कुटिया में तपस्या कर रहे थे। देवीगिरिजी के धर्मप्रसंग में महाराज ने अपनी दैनन्दिनी में लिखा था :

''देविगिरिजी कहते थे – बेटा मनन करो। एक ही ग्रन्थ बार-बार पढ़कर आत्मसात् कर लो। मैं उनकी बगलवाली कुटिया में रहता था। उनकी दिनचर्या को ध्यान से देखा था। वे प्रात:काल से ८ बजे तक ध्यान करते थे। तदुपरान्त प्रात:कृत्यादि समाप्त करके पूजा, गीतापाठ, विष्णुसहस्रनाम का पाठ करके ११ बजे भिक्षा के लिए जाते थे। वहाँ पर भोजन के उपरान्त धर्म-चर्चा होती थी। तदनन्तर थोड़ा-सा विश्राम करके शांकरभाष्य के साथ शास्त्र पढ़ाते थे। तत्पश्चात् ध्यान और कुछ आहार करके आग के पास बैठकर शास्त्र की बातें कहते थे। कोई श्लोक भूल जाने पर कई सूखे पत्ते आग में डाले जाते थे और उसी प्रकाश से श्लोक पढ़ा जाता था। यह वास्तव में प्राचीन मुनि-ऋषियों का भारत है, जो आधुनिक सुविधाओं और चकाचौंध से रहित है। देविगिरिजी स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज के साथ उत्तरकाशी में थे और उनके त्याग-वैराग्य की बातें कहते थे।''

स्वामी धीरेशानन्द महाराज ने अपनी दैनन्दिनी में स्वामी ब्रह्मप्रकाश, स्वामी शरणदास, स्वामी माधवानन्द, स्वामी शंकरानन्द, स्वामी रामलाल गिरि, साधु मथुरादास इत्यादि संन्यासियों की उपदेशात्मक बातें लिखी थीं। मथुरादास की चरम वैराग्य की पराकाष्ठा के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है : ''वे जब भिक्षा करने जाते, तो रोटी लेते थे, किन्तु जल नहीं लेते थे। कहते 'जल तो गंगा में पाऊँगा।' बर्फ में भी नंगे पैर ही भिक्षा करने जाते थे। कोई यदि पूछता, 'ठण्डा नहीं लगता?' तो वे उत्तर देते, 'अन्दर गरम है।' देहबोधविवर्जित आत्मज्ञ पुरुष थे।''

सभी कुछ पुस्तक में है। पवित्र, प्रेमिक और पण्डित संन्यासियों के संस्पर्श से समझा जाता है कि आध्यात्मिक जीवन किसे कहते हैं। स्वामी धीरेशानन्द जी के साथ दीर्घकाल तक रहने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला। किन्तु महाराज ने अयाचित भाव से ही अपने सारे जीवन का शास्त्रसंग्रह और आध्यात्मिक सम्पद, जो उन्होंने मधुकर के जैसा विभिन्न साधुओं से प्राप्त किया था, वह सब मुझे देकर गये हैं। काशी में एक दिन उन्होंने मुझसे कहा था, ''देखो, मेरे मरने के बाद ये लोग पुँथी-पत्र सब गंगा में फेंक देंगे। तुम यह सब अमेरिका ले जाओ। तुम इसका महत्त्व समझोगे।''

०३/१०/१९७७, काशी सेवाश्रम

इस दिन महाराज ने मुझसे कहा, ''देखो, रवीन्द्रनाथ ने अपनी कविता में इस प्रत्यक चैतन्य की ओर संकेत किया है –

बहुत दिन से बहुत कोश दूर
बहुत व्यय कर बहुत देश घूमकर
देखने गया पर्वतमाला,
देखने गया था सिन्धु।
दर्शन नहीं हुआ आँखें खोलकर
घर के बहुत पास ही था
एक धान के शिर के ऊपर
एक शिशिर का बिन्दु।

''यह शिशिर बिन्दु ही प्रत्यक् चैतन्य है। इस क्षुद्र शिशिर बिन्दु के भीतर अनन्त आकाश की प्रतिछाया देखी जाती है; उसी प्रकार हमारे प्रत्यगात्मा के भीतर अनन्त आत्मा का अनुभव होता है।''

१९९६ ई. के फरवरी महीने में स्वामी धीरेशानन्द जी महाराज के साथ दिल्ली में भेंट हुई थी। वे कनखल से चिकित्सा हेतु दिल्ली आये थे। जब भी उनके साथ भेंट होती, तब केवल शास्त्र और साधन-भजन के बारे में ही बातचीत होती थी। वे कहते – ''अन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतु:'' (मुण्डक उपनिषद् २/२/५) – संसार की बातें छोड़ दो, यही आत्मज्ञान ही मुक्ति का उपाय है।

तदुपरान्त १९९७ ई. में ग्रीष्म काल में जब भारत आया तब ३ से ६ सितम्बर तक कनखल में था। ४ सितम्बर को धीरेशानन्द जी के साथ अनेक बातें हुईं। देखा, वे अन्तर्मुख हैं। उन्होंने अन्य शेष दैनन्दिनी मुझे दे दी। उन्होंने कहा, ''अभी श्रीरामकृष्ण-पूँथी पढ़ रहा हूँ और स्मरण-मनन लेकर

हूँ। शास्त्रादि अब और अच्छा नहीं लगता है।

विवेकचूडामणि से कहा –

लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनं।
शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाधायसापनयं कुरु।।२७०।।

– लौकिक और सामाजिक शिष्टाचार छोड़ दो। देह की सुखेच्छा छोड़ो और शास्त्र का पाण्डित्य प्रकट करने का प्रयास छोड़कर स्वयं का अध्यास दूर करो।

दूसरे दिन देखा, 'शिशुदेर श्रीरामकृष्ण' पुस्तक पढ़ रहे हैं और कामारपुकुर में ठाकुर की समाधि का चित्र देख रहे हैं। तत्पश्चात् हँसकर कहा, ''देखो, कामारपुकुर में मैंने मेघ और बगुला देखा, किन्तु हाथ में मूरी नहीं थी, इसीलिए समाधि नहीं हुई।''

उसके अगले वर्ष ये शास्त्रज्ञ साधु इस धराधाम को त्यागकर चले गये।

स्वामी मुक्तानन्द (-१९९६)

स्वामी मुक्तानन्द या बनविहारी महाराज एक आदर्श कर्मयोगी संन्यासी थे। वे स्वामीजी द्वारा प्रवर्तित 'शिवज्ञान से जीवसेवा' को काशी सेवाश्रम में स्वयं के जीवन में दिखाकर गये हैं। काशी में वे 'बन बाबा' के नाम से प्रसिद्ध थे।

स्वामी मुक्तानन्द 'बन बाबा'

१९७७ और १९८२ ई. में मैं महाराज के साथ सेवाश्रम के एक ही भवन में था। वे बहुत सुबह उठकर दशाश्वमेध घाट में गंगा स्नान करके विश्वनाथ और अन्नपूर्णा का दर्शन करके मस्तक में भस्म लगाकर वापस आते थे। मन्दिर के सभी लोग उनको जानते और सम्मान करते थे। तदुपरान्त वे अपने गेरुआ कमीज के ऊपर लम्बा अपरोन लगाकर अस्पताल के ड्रेसिंग विभाग में जाते थे। जिनकी सर्जरी हुई है, उनकी वे ड्रेसिंग करते थे। रोगियों को यह विश्वास था कि बन बाबा का स्पर्श करने से ही रोग जल्दी ठीक हो जायेगा।

स्वामी मुक्तानन्द जी दोपहर २ बजे अस्पताल से वापस आकर भोजन करते थे, तब तक सभी साधुओं का भोजन समाप्त हो गया रहता था।

मैंने एक दिन पूछा, ''महाराज, आप रात्रि में भोजन नहीं करते?''

उन्होंने हँसते हुए कहा, ''नहीं। मैं दिन में एक बार ही भोजन करता हूँ, किन्तु उसी समय अधिक मात्रा में खा लेता हूँ।''

तदुपरान्त थोड़ा-सा विश्राम करके बरामदा में हाथ पंखा लेकर बैठते थे। उसी समय उनके साथ बातें करता था। वे आग्रह से अमेरिका के कार्यों के विषय में सुनते थे। वे मधुरभाषी और सदानन्दमय पुरुष थे।

कर्म के द्वारा मुक्ति होती है, भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है – **तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।। (३/१९)** में कहा है : तुम अनासक्त होकर सर्वदा कर्तव्य कर्म का अनुष्ठान करो। कामनाशून्य होकर कर्म करने से मनुष्य निश्चय ही मुक्तिलाभ करता है।

बन बाबा ने भगवान के इस वाक्य का पालन करने का फल अवश्य पाया है। **(क्रमशः)**

मैं खूब आन्तरिक आशीर्वाद देता हूँ, जिससे तुम्हें शान्ति मिले। उस शान्तिधाम में पहुँचने का मार्ग भी मैंने तुम लोगों से कह दिया; किन्तु वह सब करना होगा। बाहर से केवल उद्दीपन मिलेगा और शेष सब स्वयं को ही करना पड़ेगा। गुरुशक्ति ही वही उद्दीपन है। जितना उस ओर बढ़ोगे, उतना ही रास्ता साफ देखोगे।

आशीर्वाद तो देता ही हूँ, खूब आशीर्वाद देता हूँ। हम लोगों के पास सिवाय आशीर्वाद के और क्या है? आशीर्वाद देने के कारण ही तो यह सब कह रहा हूँ। ठाकुर को पुकारो, उनके शरणापन्न होओ। हमारे ठाकुर तो जीवन्त हैं। व्याकुल होकर उन्हें एक बार पुकारकर तो देखो, वे तत्क्षण ही उत्तर देंगे। जो भगवान हैं, जो परब्रह्म हैं, वे ही बहुतों के कल्याणार्थ इस युग में रामकृष्ण-रूप धारण कर आये हैं। तुम जब उन युगावतार के आश्रय में आये हो, तो फिर चिन्ता किस बात की?

– स्वामी शिवानन्द जी (महापुरुष महाराज)

शिकागो भाषण विशेष

स्वामी विवेकानन्द की स्वर-ध्वनि की रिकॉर्डिंग के सम्बन्ध में

एम.एस.ननजूनडीह

अनुवादक – रीता घोष, बैंगलुरू

१८९३ ई. में शिकागो में आयोजित विश्व सर्वधर्म-सम्मेलन में प्रदत्त व्याख्यान की ध्वनि-रिकॉर्डिंग पर एक तथ्य –

अधिकतर पूछा गया प्रश्न – '१८९३ ई. में शिकागो में आयोजित विश्व सर्वधर्म-सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त व्याख्यानों में से किसी की रिकॉर्डिंग उपलब्ध है क्या?'

अधिकांशत: पूछे गये इस प्रश्न का लेखक द्वारा अनुसंधान किया गया। शिकागो, विवेकानन्द वेदान्त सोसाइटी के स्वामी चिदानन्द जी ने लेखक को सूचित किया कि उन्होंने इस विषय पर जाँच की एवं पाया ऐसी कोई भी रिकॉर्डिंग उपलब्ध नहीं है।

वेदान्त सोसाईटी, सेंट लूइस के स्वामी चेतनानन्द जी ने भी इस विषय का अनुसरण करते हुए शिकागो ऐतिहासिक संस्था (पुरालेख तथा हस्तलिपि) द्वारा प्रदत्त परामर्शानुसार महासम्मेलन (कांग्रेस) पुस्तकालय के साथ सम्बन्धित विषय पर वार्ता की। अन्तत: निष्कर्ष निकला कि ऐसी कोई भी रिकॉर्डिंग नहीं है।

Edison Home Phonograph

स्वामीजी की पश्चिमी यात्रा पर शोध करनेवाली सुपरिचित अनुसंधाता मेरी लुईस बर्क ने जनवरी, १९९४ में अपने बेलूड़ मठ प्रवास के समय, रामकृष्ण मठ एवं मिशन के तत्कालीन सहायक महासचिव स्वामी प्रभानन्द

जी से इस विषय पर चर्चा करती हुई, ऐसी सम्भावना के विषय में उन्हें सूचित किया था। लुईस ने उन्हें बताया कि तत्कालीन दो अमेरिकी इतिहास-विशेषज्ञों के अनुसार

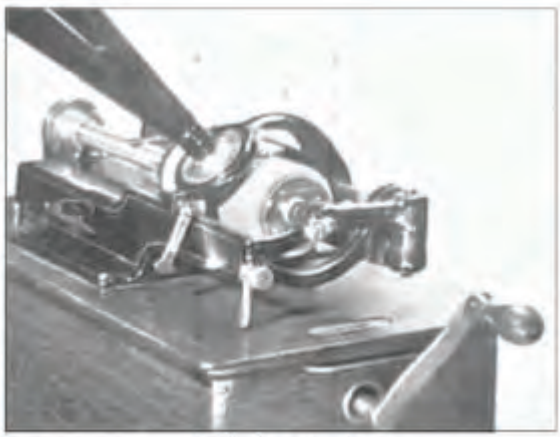

Cylinder recorder

Edison Recording Cylinder

तथा उनके स्वयं के अनुसंधानानुसार विश्वधर्म-सम्मेलन की अवधि में स्वामी विवेकानन्द जी के भाषण की कोई रिकॉर्डिंग नहीं की गयी थी।

इसके अतिरिक्त लेखक ने शिकागो, ऐतिहासिक संस्था की शोध शाखा तथा शिकागो, पुरालेख कला संस्थान से भी सीधे ई-मेल द्वारा संवाद किया। दोनों विभागों ने लेखक को आश्वस्त किया कि ऐसी कोई भी रिकॉर्डिंग उपलब्ध नहीं है। पुरालेख कला संस्थान ने और भी कहा – ''ऐसी कोई भी सूचना नहीं मिलती है कि महासम्मेलन में कोई भी ध्वनि रिकॉर्डिंग की गयी थी।'' उस समय तकनीकी का क्षेत्र सीमित था।

लेखक द्वारा कुछ अन्वेषण

१८९३ में संयुक्त राष्ट्र में स्वर-अभिलेखनबद्ध या रिकॉर्डिंग के लिए आवश्यक था कि व्यक्ति मध्याच्छादक (Diaphragm) से लगाया हुआ एक मुखनली (Mouth piece) में बात करे, जो एक लेखनी (stylus) से जुड़ा होता था, जो उत्पन्न ध्वनि (sound source) कम्पन्न प्रकार से एक घूमते हुए सिलिन्डर पर नक्काशी बनाता था। वारलिनर ग्रामोफोन, संयुक्त राष्ट्र में १८९४ ई. में जनप्रिय हुआ। वह केवल मात्र दो मिनट के लिए रेकार्ड बना सकता था। केवल दो मिनटवाली सिलिन्डरों को व्यवहार में लाया जाता था और ये केवल दो से तीन मिनटों तक का ही रिकॉर्ड बना सकता था। प्रसारण कक्ष (स्टूडियो) के बाहर रिकॉर्डिंग करना सम्भव नहीं था। स्वीकार्य गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए स्टूडियों में भी अत्यधिक प्रयत्न करना पड़ता था। तकनीकी सीमितता को देखते हुए १८९३, विश्वधर्म-सम्मेलन के अधिवेशनों की रिकॉर्डिंग सम्भव नहीं हो पायी होगी।

वर्तमान में एक रिकॉर्डिंग स्वर जो स्वामी विवेकानन्द जी का स्वर बताकर इंटरनेट तथा अन्य स्थानों पर प्रसारित हो रहा है, यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। इस रिकॉर्डिंग में केवल प्रथम भाषण ही नहीं, बल्कि साथ ही अन्य दूसरे भाषण भी हैं और यह अनेक मिनटों तक चलता है। इस प्रकार की रिकॉर्डिंग उस समय, उपरोक्त कारणों से सम्भव ही नहीं थी।

एक दूसरी रिकॉर्डिंग जो प्रसारित हो रही है, उसमें एक महिला स्वामी विवेकानन्द का परिचय देती है। यह बात सिद्ध करती है कि यह रिकॉर्डिंग सत्य नहीं है। २ नवम्बर, १८९३ को स्वामीजी ने स्वयं मद्रास के अपने अनुयायी अलासिंगा पेरूमल को एक पत्र में लिखा था – डॉ. बैरोज (Dr. Barrows) ने उनका परिचय दिया था और उनका आरम्भिक व्याख्यान 'बहनो और भाइयो'... के पश्चात् करतालियाँ दो मिनटों तक गूँजती रहीं। जबकि रेकार्डिंग में करतालियाँ मात्र कुछ सेकेन्डों तक ही बजती हैं। एक दूसरा पहलू भी है। उस युग की रिकॉर्डिंग (जैसे कि एडिसन सिलिन्डर रिकॉर्डिंग) जब बहुत वर्षों के बाद प्राप्त की गयी, तो उसमें से संचित ध्वनि को यदि निकाला जाता है, तो ध्वनि बिगड़ जाती। जो रिकॉर्डिंग प्रसारित हो रहा है, उसमें ऐसा कोई भी शोर नहीं है। अत: यह एक प्रामाणिक रिकॉर्डिंग नहीं हो सकती है। ○○○

पुस्तक समीक्षा

योग तत्त्व चिन्तन

लेखक – डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'
प्रकाशक – कौण्डिन्य साहित्य सेवा समिति, पटेल नगर, कादीपुर, सुलतानपुर (उ.प्र.)
पृष्ठ -१८०, मूल्य – ३००/-

प्राचीन काल से भारत ज्ञान, विज्ञान का केन्द्र रहा है। यहाँ अनेक विधाओं का उद्भव एवं विकास हुआ है। ये विधायें मानवोत्थान के लिए पूर्णत: समर्पित हैं। मानव सभ्यता के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्हीं विधाओं में से एक है योग विधा। यह भारत का प्राण तत्त्व है। यह योग-चिन्तन की धारा पतंजलि के द्वारा प्रवाहित की गई है। पातंजल योगसूत्र रूपी गंगोत्री से प्रवाहित होनेवाली यह धारा भारतीय जनमानस को पुनीत करती हुई विश्वयोगदिवस तक की यात्रा पूर्ण कर रही है। यह योग-ज्ञानगंगा लोक के त्रिविध ताप को शान्त करनेवाली, अज्ञानरूपी मरुस्थल को ज्ञानधारा से सिंचित करनेवाली, रोगों का दमन करनेवाली, आरोग्यता प्रदान करनेवाली, स्वास्थ्य की वृद्धि करनेवाली, जरा को जर्जरित कर नवयुवावस्था प्रदान करनेवाली, पीड़ित की पीड़ा का हरण करनेवाली, मानसिक कालुष्य का प्रक्षालन करनेवाली, अजरत्व प्रदान करनेवाली, उच्चादर्शों की स्थापना करनेवाली, योगियों के चरित्र में उद्भाषित होनेवाली, वाङ्मय से प्रवाहित हो रही है। इस ज्ञान-प्रवाह का निबन्धन डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' ने 'योग तत्त्व चिन्तन' के रूप में किया है।

साहित्येन्दो सुधासारं योगस्य तत्त्वचिन्तनम्।
सुशीलं सौकुमार्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।।

आचार्य प्रवर ने योगविद्या की प्रासंगिकता के माध्यम से योग-बीज का चिन्तनभूमि पर रोपण किया है। जिससे जीवनौषधि का अंकुरण हुआ। शनै: शनै: तप:पूत योगियों के द्वारा सिंचित होता हुआ इस योगवृक्ष की उपनिषदयोग, पुराणयोग, विज्ञानयोग, संस्कृति योग, संस्कारयोग एवं राष्ट्रयोग प्रभृति अनेक शाखाएँ उदित हुईं, जिनसे यह मनुष्यों के आतप का शमन करने लगा। महान योगवेत्ता ऋषि, महर्षि, योगियों के चरित्रस्वरूप यह पल्लवित, पुष्पित और फलित होने लगा।

यह ग्रन्थ योग के प्राचीनतम रूप को उद्घाटित करते हुए उपनिषदों में यत्र-तत्र बिखरे हुए योग विषयक विवेचन का समायोजन करने में सफल रहा है। मनुष्य का प्रथम धर्म शरीर को नीरोग रखना है। जिसका उपदेश श्वेताश्वतरोपनिषद ने किया है –

लघुत्वमारोग्यमलोलुप्त्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति।।

योग के उक्त परिणामों को ऋषि ने प्रथम स्थानीया कहा है। पुरान्तर्गत योग-चिन्तन को प्रकाशित करते हुए आचार्य श्रेष्ठ ने उसे जन-सामान्य के लिए कल्याणकारक बताया है। यह आत्मोन्नति का कारक, देह-बलवर्धक एवं मनुष्य का सर्वातिशायी धर्म है। स्कन्दपुराण के अनुसार योग से ही समस्त दानों एवं यज्ञों के फल की प्राप्ति, कामनाओं की सिद्धि, ज्ञान का अधिगम सम्भव है। पुराणों में योग के अनेक रूपों की कल्पना की गई है, जो उसके लक्षण से परिभाषित होते हैं। ये परिभाषाएँ योग के समष्टि और व्यष्टि रूप को चरितार्थ करती हैं। देवी भागवत के अनुसार 'जीव और आत्मा की अभेद विषयक चित्तवृत्ति ही योग है।' यह योग का चिन्तन अभेदवाद का मूलमन्त्र है।

पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांगयोग का मानव जीवन में महत्त्व और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता को आचार्य ने अपने चिन्तन से व्यक्त किया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि मानव-जीवन के उत्कर्ष के सोपान हैं, जो उसके जीवन को लक्ष्य-प्राप्ति के लिए पाथेय की भूमिका का निर्वाह करते हैं। इनकी सिद्धि केवल योग द्वारा ही सम्भव है। भौतिक जगत् में योग की उपादेयता को आचार्य वृन्द ने अपने आलेख से सुसज्जित करने का सार्थक प्रयास किया है। योग मानव जीवन में अन्न, जल और वायु के समान ही उपादेय है। इसके बिना मानव-जीवन की कल्पना नीरस प्रतीत होती है। यह स्वास्थ्य, संरक्षक, सर्वरोगहर्ता, मृत्यु पर विजय प्राप्त करनेवाला सभी सिद्धियों का दाता, शान्ति प्रदान करनेवाला आदियोगी महादेव शिवशम्भु के सदृश है।

स्वास्थ्य-संरक्षको योगः सर्वरोगविनाशकः।
मृत्युञ्जयो महादेवः सर्वेष्टसिद्धिशान्तिदः।।

यह योग आदि योगी शिवशम्भु, उनसे उत्पन्न शाम्भव और उनकी शक्ति शाम्भवी का संसृष्टि मात्र है। इसके सदाचरण

से त्रिविध शक्ति की प्राप्ति, त्रिविधताप से मुक्ति सम्भव है।

आचार्य ने योगी के स्वरूप के साथ-साथ आदियोगी, महायोगी, हठयोगी, कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, राष्ट्रयोगी के चरित्रों को भी रेखांकित किया है। योग को अपने जीवन में उतारकर, नियम-संयमों को अपनाकर अष्टांगयोग की सहायता से कैसे एक सामान्य मनुष्य महापुरुष, योगी और महायोगी बन जाता है, जो अन्यों के जीवन को भी आदर्श एवं कल्याणकारक बना देता है। प्राणायाम द्वारा अत्यन्त तीक्ष्ण बनाई हुई ओंकार रूप धारवाली, वैराग्य रूप पत्थर पर घिसी हुई छुरी से संसार रूपी सूत्र को काटकर, सिद्धयोगी कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है।

प्राणायामसुतीक्ष्णेन मात्रापारेण योगवित्।
वैराग्योपधृष्टेन छित्त्वा तन्तुं न बध्यते।।

(क्षुरिकोपनिषद- २५)

– जो भय, क्रोध, आलस्य, अतिनिद्रा, अतिजागरण, अतिभोजन, अभोजन, विषयोपभोग आदि प्रवृत्तियों का त्यागकर शिवोऽहम् की भावना से अभिप्रेरित होकर स्वयं को परमात्मामय मानता है, वही योगी पद का अधिकारी है। वास्तविक योगी भौतिक पदार्थों, विषयोपभोग की कामनाओं से ऊपर उठकर जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्नावस्था के सुख-दुख, मोह-माया, हर्ष, शोक आदि के आकर्षणों से विरक्त होकर सर्वत्र शिव स्वरूप का दर्शन करता है। वह मानव समाज के कल्याण एवं उत्थान के साथ प्रतिबद्ध रहता है। वह समस्त पशु-पक्षी, जलचर, थलचर, नभचर प्राणियों एवं चराचर जगत के कल्याणार्थ अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए हमेशा उद्यत रहता है। स्वजीवन जनसेवा के लिए समर्पित कर देता है। ऐसी ही विभूतियों में से स्थालीपुलाकन्याय के आधार पर विशिष्ट योगियों के चरित्र का मूल्यांकन आचार्य ने किया है। जैसे राष्ट्रयोगी के रूप में पं. दीनदयाल उपाध्याय के लोकोपकारक राष्ट्रसेवी चरित्र का अंकन, ज्ञानयोगी रूप में हृदय नारायण दीक्षित के चरित्र की ज्ञानशीलता, समाजयोगी के रूप में डॉ. राममनोहर लोहिया के चरित्र की सामाजिक महनीयता, विश्वयोगी विवेकानन्द के चरित्र की विश्वबन्धुता विश्वव्यापकता, फकीर योगी साई बाबा के चरित्र की सर्वग्राह्यता, सहृदयता एवं आदित्यनाथ के चरित्र की कर्मप्रधानता, गुणग्राहकता, वीतराग दीनों के प्रति सदाशयता आदि उल्लेखनीय है।

राष्ट्र की अस्मिता के संरक्षण, संवर्धन, समुन्नयन हेतु योगसम्बन्धी अनेक उपादानों का आचार्यप्रवर ने रोपण किया है। जो यौगिक भूमि पर अंकुरित पल्लवित, पुष्पित और फलित होते हुए प्रतीत हो रहे हैं। जिनमें प्रमुख हैं – संस्कृतियोग, संस्कारयोग, राष्ट्रयोग, जीवनयोग, अमंगलकामावरोधकयोग, आनन्दयोग आदि। संस्कृति योग से मानवीय मूल्यों का ग्रहण, सौन्दर्यबोध का अधिगमन, उदारता का उन्नयन, विश्वबन्धुत्व का शिक्षण, दया का हृदयंगम, क्षमा का उद्रेक, भगवान का भजन, भक्ति का ग्रहण, श्रद्धा का अनुप्राणन, सहृदयता का उपदेश, सहयोगिता का विकास, आत्मा का परिष्कार, राष्ट्र रक्षा का बोध, कर्तव्य का अनुपालन, तेजस्विता का संचालन, प्रकृति का संरक्षण, सद्विचारों का उपदेश, दीन-दुखियों की सेवा-भावना, इन्द्रियों का दमन, विषयों का निर्मोह, निःस्वार्थभाव का परिचायक, प्राकृतिक पदार्थों के प्रति समभावत्व, दार्शनिक अवधारणाओं का चिन्तन, नैतिकमूल्यों का मानदण्ड आदि परिलक्षित होता है।

संस्कारयोग से मानव अपने जीवन को सुव्यवस्थित करता है। गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक समस्त संस्कार मानवोपयोगी गुणधर्मों का विन्यास करनेवाले हैं। ये संस्कार मनुष्य के इहलोक और परलोक की सिद्धि करने में सक्षम हैं। इस संस्कारयोग से ही आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक, शैक्षणिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यावहारिक, आर्थिक, पारमार्थिक, मांगलिक एवं वैज्ञानिक उन्नयन सम्भव है। जिसके विन्यास का सराहनीय प्रयास उक्त उपबन्ध में द्रष्टव्य है।

संस्कारयोग आदर्शः दिव्यः लोकोपकारकः।
विश्वेश्वरादियोगीव शुभसौभाग्यदायकः।।

साहित्येन्दु द्वारा रचित 'योग तत्त्व चिन्तन' मानव समाज में योग के उच्चादर्शों का विन्यास करने में, स्वास्थ्यरक्षा के उपदेश करने में, योग को विश्व में स्थापित करने के प्रमाणों को चित्रांकन करने में, जीवन को सार्थक बनाने में, राष्ट्रयोग से परिचय कराने में, योग सम्बद्ध उपादानों को उपस्थापित करने में, कुम्भयोग साधना को व्याख्यायित करने में, पापमुक्ति में आधुनिक जीवन की विसंगतियों के समाधान करने में यह सराहनीय प्रयास है।

क्रियायोगेनेदं सकलभुवनं मोहरहितं
शरीरं नीरोगं किसलयनिवेदं सुगठितम्।
मनस्तापं दग्धं भवति खलु सिद्धेः सुजनकं
नु साहित्येन्दोर्योगविषयकसञ्चिन्तनपरम्।।

समीक्षक – डॉ. राघवेन्द्र शर्मा,
साहित्य विभागाध्यक्ष,
शास. संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर

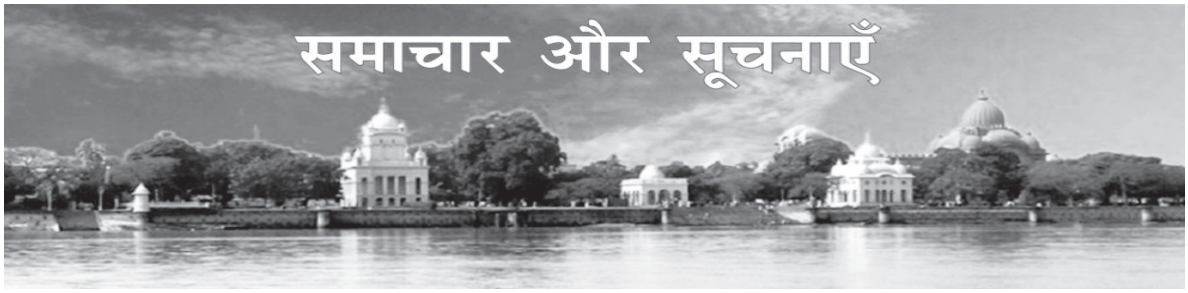

रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस (२१ जून) मनाया गया

चेंगम, चेन्नई मठ, चेन्नई विद्यापीठ, हलसुरु, हाटमुनीगुड़ा, जम्मू, कड़प्पा, कालाडी, करीमगंज, लखनऊ, मदुरै, नौरा, नारायणपुर, पुन्नमपेट, पोर्टब्लेयर, राँची मोराबादी, विवेकानन्द विश्वविद्यालय, सेवा प्रतिष्ठान, तंजौर और विशाखापत्तनम् केन्द्र द्वारा योग दिवस मनाया गया।

रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों द्वारा विभिन्न कार्यक्रम आयोजित हुए

चेंगम : ८ जून को शिक्षकों हेतु रिफ्रेशर कोर्स आयोजित किया गया, जिसमें ४३ शिक्षकों ने भाग लिया।

डिगबोइ : १८ जून को आयोजित युवा सम्मेलन में विभिन्न विद्यालयों से कुल ६० विद्यार्थी उपस्थित थे।

जम्मू : ३० मई को आयोजित युवा सम्मेलन में विभिन्न महाविद्यालयों से कुल २०० विद्यार्थी उपस्थित थे।

कोईलाण्डी : १८ जून को युवा शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें कोइलैण्डी के समीपस्थ ४ गाँवों से कुल ५९ युवाओं ने भाग लिया।

मायावती : २५ जून को युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न विद्यालयों एवं महाविद्यालयों से कुल ३०० विद्यार्थियों ने भाग लिया।

राँची सेनेटोरियम : ११ जून को युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें ४५ युवा बालक- बालिकाओं ने भाग लिया।

तंजौर : (१) ३० मई को कैरियर मार्गदर्शन एवं नैतिक शिक्षा कार्यक्रम में १० विद्यार्थियों ने भाग लिया।

(२) १० जून को दिव्यांग बच्चों के अभिभावकों हेतु मनोबलवर्धक कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

नेत्र–शिविर एवं स्वास्थ्य सेवाएँ

निम्नलिखित केन्द्रों द्वारा स्वास्थ्य शिविर का आयोजन किया गया –

आसनसोल : २३ मई से २८ जून तक नेत्र-शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें ३९१ रोगियों का नेत्र-परीक्षण, ६२ रोगियों की शल्य-चिकित्सा एवं ३६ रोगियों को चश्मा प्रदान किया गया।

चेन्नई मठ – चेंगलपट्टु केन्द्र द्वारा २८ मई एवं २५ जून को चेंगलपट्टु जिलें में दो नेत्र शिविर आयोजित किये गये, जिसमें १३५ रोगियों का नेत्र-परीक्षण, १८ रोगियों की शल्य-चिकित्सा, एवं ५९ चश्मे वितरित किये गये।

कानपुर : ४ जून को आश्रम-औषधालय में चिकित्सा शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें ७ चिकित्सकों ने २८६ रोगियों की चिकित्सा की।

जम्मु : ४ जून को चिकित्सा शिविर में ३२० रोगियों की चिकित्सा की गयी।

लखनऊ : मई माह में ५५७६ नेत्र-रोगियों का परीक्षण किया गया, २३४ रोगियों की शल्य चिकित्सा की गयी एवं चश्मे प्रदान किये गये।

कामारपुकुर : जून माह में ४१७ नेत्र-रोगियों का परीक्षण किया गया, ९६ रोगियों की शल्य चिकित्सा की गयी और ६२ लोगों को चश्में वितरित किये गये।

मध्यप्रदेश छत्तीसगढ़ भाव-प्रचार परिषद् की सभा आयोजित हुई

७ और ८ मई, २०२३ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भाव-प्रचार परिषद् की सभा विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में आयोजित हुई, जिसमें भाव-प्रचार परिषद के अध्यक्ष स्वामी व्याप्तानन्द जी, परिषद् के उपाध्यक्ष स्वामी अव्ययात्मानन्द, स्वामी नित्यज्ञानानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी राघवेन्द्रानन्द, स्वामी सेवाव्रतानन्द जी और बेलूड़ के प्रतिनिधि के रूप में पधारे स्वामी निर्विकल्पानन्द जी महाराज ने भाग लिया और भावधारा के प्रचार-प्रसार एवं युवकों को भावधारा से जोड़ने के लिये व्यावहारिक परामर्श प्रदान किये। परिषद के संयोजक स्वामी तन्मयानन्द आदि ने सबका स्वागत किया। परिषद् की सभा में २० आश्रमों के लगभग ४० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ८ अगस्त को भक्त-सम्मेलन था, जिसमें कुल ६० भक्त उपस्थित थे।